"हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन का विकास : 1901–1920 तक"

एम० फिल० (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु–शोध–प्रबन्ध

2004

शोधनिर्देशक

प्रो० मैनेजर पाण्डेय

शोधकर्ता

सुजीत कुमार त्रिपाठी

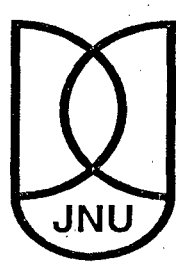

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

Dated: 21 July, 2004

DECLARATION

I declare, that the material in this Dissertation entitled ***"HINDI MEIN VIJANAN SAMBANDHI CHINTAN KA VIKAS: 1901-1920 TAK"*** submitted by me is an original research work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Sujit Kr Tripathi

SUJIT KUMAR TRIPATHI
(NAME OF THE SCHOLAR)

M. Pandey

PROF. MANAGER PANDEY
(SUPERVISOR)
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE & CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

PROF. NASEER AHMAD KHAN
(CHAIRPERSON)
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES
SCHOOL OF LANGUAGE, ITERATURE & CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

माँ
जिससे भाषा सीखी
पिता
जिससे संस्कार
जिनके होने से मैं हूँ
है मेरा सारा संसार

अनुक्रम

अनुक्रम

अध्याय विवरण	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	I-VII
अध्याय एक हिदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन : भारतेन्दु युग (1850 ई – 1900 ई.)	1–35
अध्याय दो हिदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन : द्विवेदी युग (1901 ई. – 1920 ई.)	36–52
अध्याय तीन 'विश्व प्रपञ्च' और 'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका (का महत्व)	53–96
अध्याय चार द्विवेदी युग की कुछ प्रमुख पत्रिकाओं से चुने हुए ग्यारह लेख (एक टिप्पणी)	97–137
उपसंहार	138–142
परिशिष्ट एक	143–150
परिशिष्ट दो	151–167
परिशिष्ट तीन	168–173
परिशिष्ट चार	174–185
सन्दर्भ सूची	186–189

प्रस्तावना

प्रस्तावना

लघु–शोध–प्रबन्ध के विषय की प्रकृति को देखते हुए इसे सुविधाजनक और व्यवस्थित अध्ययन के दृष्टिकोण से तथा एक अकादमीय रूप देने के लिए अग्रलिखित चार अध्यायों में विभाजित करने का प्रस्ताव है।

अध्यायों का वर्गीकरण विषय के कालक्रमानुसार विकास को ध्यान में रखकर ही किया गया है। इन चार अध्यायों के बाद उपसंहार, चार परिशिष्ट तथा अन्त में सहायक ग्रन्थों/पत्र–पत्रिकाओं की एक संदर्भ–सूची दी जा रही है।

अध्यायों के क्रम इस प्रकार हैं –

- पहला अध्याय – हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन : भारतेन्दु युग (1850 ई.–1900 ई.)।
- दूसरा अध्याय – हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन : द्विवेदी युग (1901 ई. –1920 ई.)।
- तीसरा अध्याय – 'विश्व–प्रपञ्च' और 'विश्व–प्रपञ्च की *भूमिका*' (का महत्व)।
- चौथा अध्याय – द्विवेदी युग (1901ई.–1920 ई.) की कुछ प्रमुख पत्रिकाओं से चुने हुए ग्यारह महत्वपूर्ण वैज्ञानिक लेख।

परिशिष्टों के क्रम इस प्रकार हैं –

- परिशिष्ट : 1 भारतेन्दु युग में वैज्ञानिक लेखों/पुस्तकों की सूची । (लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

❖ परिशिष्ट : 2 द्विवेदी युग में वैज्ञानिक लेखों की सूची – 'सरस्वती' के सन्दर्भ में।

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

❖ परिशिष्ट : 3 द्विवेदी युग में विज्ञान–विषयक पुस्तकों की सूची ।

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

❖ परिशिष्ट : 4 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्राप्त आर्य भाषा पुस्तकालय की विज्ञानादि विषयक पुस्तकों की संक्षिप्त सूची।

सन्दर्भ–ग्रन्थों की सूची को सीधे दो शीर्षकों में बाँटा गया है –

❖ पुस्तकों की सूची

❖ पत्र–पत्रिकाओं की सूची

विषय की प्रकृति ऐसी है कि संदर्भ–ग्रन्थों की सूची को आधार–ग्रन्थ, सहायक–ग्रन्थ (प्राथमिक तथा द्वितीयक) में बाँटना सम्भव नहीं है। विषय–विवेचन के लिए किसी एक ग्रन्थ को आधार–ग्रन्थ नहीं बनाया गया है। हाँ, 'विश्व–प्रपञ्च', 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' तथा 'सरस्वती' की फाइलों को अवश्य ही अधिक महत्व दिया गया है।

❖ पहले अध्याय में विषय से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये हैं तथा उनके उत्तर देने का प्रयास किया गया है। ये प्रश्न इस प्रकार हैं –

पहला प्रश्न – आज़ादी से पहले औपनिवेशिक युग में भारत में सामान्य तौर पर विज्ञान के विकास की क्या स्थिति रही है? तथा इस स्थिति के पीछे कौन–कौन से ऐतिहासिक–राजनीतिक कारक रहे हैं ?

दूसरा प्रश्न – सामाजिक परिवर्तन की किन शक्तियों के दबाव में 'निज–भाषा' में वैज्ञानिक साहित्य का प्रणयन संभव हो सका तथा वे कौन–कौन सी संस्थायें/समितियाँ और विभूतियाँ रहीं जिन्होंने इस परिवर्तन में एक ऊर्ध्वगामी

गति का संचार किया; विशेषकर हिंदी प्रदेश में भारतेन्दु, उनके मण्डल तथा उनके अन्य सहयोगियों के संदर्भ में।

इसके अतिरिक्त इसी अध्याय में भारतेन्दु युग की कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक रचनाओं की संक्षिप्त सूची (विस्तृत सूची परिशिष्ट : 1 में) तथा उस युग की महत्वपूर्ण विज्ञान–विषयक पुस्तक शिव प्रसाद सिंह 'सितारे हिन्द' की 'विद्यांकुर' पर एक समीक्षापरक टिप्पणी भी सम्मिलित है।

❖ दूसरे अध्याय की विषय–वस्तु का निर्माण, मुख्यतः, द्विवेदी युग में हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन के विकास सम्बन्धी अध्ययन को आधार बनाकर, किया गया है। इस क्रम में सबसे पहले द्विवेदी युग में हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य से जुड़ी कुछ सामान्य बातें फिर श्रीधर पाठक सम्पादित महत्वपूर्ण विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान' का परिचय, उसके प्रथमांक में छपे लेख तथा लेखकों की सूचना, फिर, द्विवेदी युग में 'हिन्दी साहित्य' और 'हिन्दी में विज्ञान–लेखन' से साथ–साथ जुड़े लेखकों और उनके लेखों की संक्षिप्त सूचना तथा इस युग की, हिन्दी में, विज्ञान विषयक महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची के लिए राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली द्वारा 1998 ई. में कराये गये एक सर्वेक्षण की चर्चा सम्मिलित है।

इसके बाद विवेचन का मुख्य आकर्षण, द्विवेदी युग की प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में विज्ञान–लेखन की स्थिति की जाँच–पड़ताल है। इससे सम्बन्धित विस्तृत सूची परिशिष्ट : 2 में सम्मिलित है।

अध्याय के अन्त में द्विवेदी युग में 'हिन्दी साहित्य के ज्ञान काण्ड' की रचना करने वाले स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के विज्ञान–सम्बन्धी लेखन कार्यों और उनके प्रचार–प्रसार की सूचनापरक जानकारी दी गई है।

❖ तीसरे अध्याय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रणीत विश्व–प्रपञ्च की भूमिका तथा उन्नीसवीं सदी के जर्मन प्राणितत्व–वेत्ता ई.एच. हैकेल की पुस्तक 'डी वेल्ट

रैथ्सेल ***(Die Welträthsel)*** के जोसेफ मैक्केब कृत अंग्रेज़ी अनुवाद 'द रिडिल ऑफ द यूनिवर्स' (***The Riddle of the Universe***) के हिन्दी अनुवाद 'विश्व प्रपञ्च' पर विशेष ध्यान दिया गया है।

'विश्व प्रपञ्च' (1920 ई.), द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। विज्ञान विषय की आरंभिक से लेकर अधुनातन जानकारी से लैस इस पुस्तक को शोध–प्रबन्ध में विषय विवेचन के लिये शामिल ना करने का कोई कारण नहीं दिखता।

विश्व प्रपञ्च के जिस संस्करण का उपयोग इस हेतु किया जा रहा है वह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से मनोरंजन पुस्तक 'माला' योजना के आधीन छापा गया 33वाँ–34वाँ पुष्प है। यह संयुक्त संस्करण 1962 ई. का है। इससे पहले यह पुस्तक दो खण्डों में 1920 ई. में छपकर पाठकों के सम्मुख आया (सन्दर्भ के लिए देखिए 'विश्व प्रपञ्च' की सुधाकर पाण्डेय लिखित प्रकाशकीय)। पहले–पहल हिन्दी साहित्य में 'विश्व प्रपञ्च' को प्रतिष्ठित करने वाले हिन्दी सेवी डॉ. रामविलास शर्मा हैं।

"शुक्ल जी का 'विश्व प्रपञ्च' दो खण्डों में 1920 में प्रकाशित हुआ था। बाद में बहुत दिनों तक वह पुस्तक विस्मृति के अंधकार में खोई रही। उसको याद करने और उसके महत्व को पाठकों के सामने लाने का काम रामविलास शर्मा ने 1959 में किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सम्पत्ति शास्त्र' को नया जीवन दिया उसी तरह रामचन्द्र शुक्ल के 'विश्व प्रपञ्च' को भी।"[1]

'विश्व प्रपञ्च' पर केन्द्रित इस अध्याय को दो खण्डों में बाँटा गया है। खण्ड–1, 'द रिडिल ...' और उसके अनुवादक जोसेफ़ मैक्कैब तथा लेखक ई.

---

[1] डॉ. मैनेजर पाण्डेय का लेख– "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विकासवाद", 'नया मानदण्ड' – अंक : 31, (जनवरी–मार्च, 2004), पृष्ठ 29.

एच. हैकेल पर केंद्रित है तथा खण्ड–2, विशुद्ध रूप से 'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका और उसके महत्व पर केंद्रित है।

❖ अध्याय चार में ग्यारह चुने हुए वैज्ञानिक लेख शामिल किये गये हैं। ये लेख या तो 'सरस्वती' से या फिर उसके समानान्तर अन्य पत्रिकाओं यथा 'नागरी प्रचारणी पत्रिका', 'विज्ञान' आदि में छपे विज्ञान–विषयक लेख हैं। ये लेख इस शोध–प्रबन्ध में इसलिए शामिल किये गए हैं ताकि द्विवेदी युग में विज्ञान–विषयक लेखों में प्रयुक्त भाषा तथा उससे जुड़ी समस्याओं तथा विषय की गम्भीरता की एक झलक, जिज्ञासुओं को मिल सके। इन लेखों के चयन का आधार उनमें वर्णित विषय की गम्भीरता और भाषा की कारीगरी है।

इसके अतिरिक्त इन लेखों पर संक्षिप्त टिप्पणी भी साथ ही कर दी गई है ताकि लेख में वर्णित विषय के आशय को सामान्य जिज्ञासुओं को भी समझने में सुविधा हो सके। इन लेखों के आंशिक हिस्से ही नमूने के तौर पर प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

लेखों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण सूचनायें जैसे लेखक का नाम, प्रकाशन स्थल, प्रकाशन वर्ष आदि की जानकारी अध्याय के शुरू में ही दे दी गई है।

इस प्रस्तावना के माध्यम से मैं यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि मेरा यह लघु–शोध–प्रबंध मुख्यतः सूचनापरक ***(Informative)*** प्रकृति का ही है। मैंने पूरे शोध के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि इस प्रबन्ध के माध्यम से लोगों तक विवेच्ययुग (द्विवेदी युग, 1901 ई.–1920 ई.) के संदर्भ में हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन की अधिकाधिक सूचना पहुँचाई जाये। अधिक उत्साह के कारण प्रबन्ध में कहीं–कहीं सूचनाओं का सन्दर्भ विवेच्य कालावधि की ऊपरी सीमा 1920 ई. को पार भी कर गया है, किन्तु इसे मैं असंगत नहीं समझता

बल्कि किसी न किसी रूप में ये रचनायें विषय के विकास में सहायक ही सिद्ध हुई हैं।

मैं निवेदन करना चाहूँगा कि मैंने विज्ञान से आशय व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकार के विज्ञान से लिया है। कहने का मतलब यह कि सूचनाओं के क्रम में जहाँ एक ओर भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, कामशास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, आदि विषयों को छुआ गया है वहीं दूसरी ओर लोकोपयोगी विज्ञान जैसे स्वास्थ्य रक्षा, चिकित्साशास्त्र, बाल तथा स्त्री रोग विज्ञान, कताई, बुनाई, अभियान्त्रिकी, कृषिशास्त्र आदि विषयों को भी समान महत्व दिया गया है।

मैं यह भी निवेदन करना चाहूँगा कि पूरे शोध–प्रबन्ध में किसी भी युग विशेष में लेखकों की, संस्थाओं की, पत्र–पत्रिकाओं की नितान्त साहित्यिक गतिविधियों पर कोई विशेष चर्चा करने का कहीं कोई प्रयास नहीं किया गया है। प्रबन्ध को प्रयासपूर्वक केवल विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन पर ही केन्द्रित किया गया है। बात पूरी करने से पहले इतना और जोड़ना चाहूँगा कि शोध के लिए यह विषय अभी भी अनेक सम्भावनाओं से भरा है इसीलिए चुनौतियाँ भी बहुत हैं। मैं यहाँ यह स्वीकारने में कोई झिझक महसूस नहीं कर रहा हूँ कि इस लघु शोध प्रबन्ध में अभी बहुत–कुछ और जोड़कर इसे और भी उपयोगी बनाया जा सकता है किन्तु सैद्धान्तिक तौर पर लघु–शोध–प्रबन्ध की अपनी एक सीमा होती है। यह सीमा ही इस अपेक्षाकृत व्यापक विषय के विधिवत् विकास के सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में पूरे शोध के दौरान बार–बार आती रही है।

संदर्भित समय से जुड़ी हुई रचनाओं/सामग्रियों की पुरातनता के कारण अधिकांशतः वे अप्राप्य रहीं या फिर बहुत थोड़े समय केवल देखकर सूचना एकत्रित कर सकने भर के लिये प्राप्त हो सकीं। देखकर खुशी हुई कि साहित्य प्रेमियों ने बहुत सावधानी से इन रचनाओं/सामग्रियों को संजोकर–सहेजकर रखा है। कहना चाहूँगा कि, अधिकांश सम्बन्धित रचनायें अप्राप्य अवश्य हैं किन्तु

अनुपलब्ध नहीं इसलिये अधिक से अधिक जितना संभव हो सका, इस लघु प्रबन्ध की सीमा के भीतर समेटने का प्रयास किया गया है।

मेरी हार्दिक अभिलाषा, भविष्य में आगे शोध के माध्यम से, अवसर मिलने पर इस विषय का अपेक्षित विस्तार कर विषय की गम्भीरता के साथ न्याय कर सकने की है।

अंत में अपनी बात मैं, श्रद्धेय गुरुवर एवं इस शोध के निर्देशक प्रो. मैनेजर पाण्डेय के प्रति नत–भाव से हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए, पूरी करना चाहता हूँ, जिनके पूरी गतिविधि के दौरान आदि से अंत तक सतत् मार्गदर्शन, प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही यह सब कुछ संभव हो सका है और हाँ, अपने अनुज डॉ. सुमित कुमार त्रिपाठी का भी विशेष आभारी हूँ जिनके समय–समय पर उचित परामर्श और अगाध भ्रातृ–स्नेह तथा हर प्रकार की छोटी–बड़ी सहायता ने शोध–कार्य को और भी अधिक रूचिकर बनाने में सहायता पहुँचाई।

किम्धिकम्!

सुजीत कुमार त्रिपाठी

अध्याय एक

हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन भारतेन्दु युग (1850 ई.–1900 ई.)

पिछले सौ वर्षों में विज्ञान का जो विकास हुआ है वह निश्चय ही विस्मयकारी है। इस विकास के सन्दर्भ में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं –

1. ऐसी कौन सी उत्प्रेरक शक्ति है जिसने विज्ञान के विकास को ऐसी अद्‌भुत गति प्रदान की है ? और,

2. विज्ञान के विकास के साथ सामाजिक विकास का रिश्ता किस प्रकार का बनता है और भारतीय समाज में उस रिश्ते का स्वरूप कैसा है ? या दूसरे शब्दों में विज्ञान के विकास के साथ समाज के वैज्ञानिक विकास का स्वरूप किस तरह निर्धारित होता है तथा भारतीय समाज के सन्दर्भ में यह स्वरूप देखने को मिलता है या नहीं ? यदि हाँ, तो उसकी विशेषताएँ क्या हैं ? यदि नहीं, तो ऐसा क्यों ?

यहाँ इन दोनों बातों का प्रसंग, लघु–शोध–प्रबन्ध की प्रस्तावना में प्रस्तावित वह पहला प्रश्न है जिसमें आज़ादी से पहले औपनिवेशिक युग में भारत में विज्ञान की स्थिति, वैज्ञानिक चेतना के प्रसार की स्थिति, उसके नियामक कारक आदि की चर्चा की गई है।

जब हम समाज के वैज्ञानिक विकास की बात कर रहे होते हैं तब निश्चय ही हमारा आशय समाज की बेहतरी से होना चाहिए। किसी समाज विशेष में विज्ञान का विकास एक बात है और विज्ञान के विकास का जन–सामान्य की चेतना के विकास पर सकारात्मक–प्रभाव और फलस्वरूप समाज का वैज्ञानिक विकास एकदम दूसरी बात है। इन दोनों में अनिवार्य सम्बन्ध हो ही, यह कहा नहीं जा सकता क्योंकि इन सम्बन्धों को अर्थ देने वाली शक्तियाँ और कारक राजसत्ता के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते हैं। 'राबर्ट ग्रॉसोतेस्त'* (1168 ई.–1253 ई.)

---

* मध्य युग के पतन काल का बहुचर्चित वैज्ञानिक (इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ.एस.टी–1 इग्नू, पृष्ठ 25).

के ज़माने या उससे भी पहले से लेकर आज के लोकतान्त्रिक युग तक में आसानी से यह बात देखी जा सकती है कि "आधुनिक विज्ञान राजसत्ता के साथ क़दम मिला के चला है।"[1] आधुनिक विज्ञान पदावली वास्तव में कट्टर मध्य युग (चर्च की सत्ता) के पतन के आस–पास उदय होने वाले विज्ञान के बारे में प्रयोग की जाती है। कट्टर मध्य युग के पतन के बाद पुनर्जागरण काल, उसके बाद का युग और उसके भी बाद औद्योगिक क्रान्ति (1760 ई.–1830 ई.) से लेकर आज तक का समय विज्ञान की प्रगति का लगातार साक्षी है। मध्य युग या उससे पूर्व के विज्ञान तथा आज के विज्ञान में अन्तर केवल इतना है कि तब (दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में) विज्ञान को धर्म की कसौटी पर कस कर देखा जाता था और आज उसे अर्थव्यवस्था के हितसाधक के रूप में। एक प्रकार से विज्ञान की सामाजिकता भी इन्हीं नियामक शक्तियों से तय होती है लेकिन इन शक्तियों में ही स्वाभाविक तौर पर विज्ञान के समाज से कटाव की संभावना को बलवती बनाने वाले कारकों के अंकुर भी छिपे रहते हैं जो राजसत्ता का प्रश्रय पाकर प्रस्फुटित हो जाते हैं और तब विज्ञान का एकांगी विकास (केवल ऊर्ध्व, क्षैतिज नहीं) शुरू हो जाता है जिसमें हम चाँद और मंगल तथा अंतरिक्ष के अन्य स्थानों तक पहुँचने की जुगत लगाते हैं – करोड़ों भूखी–नंगी जनता की परवाह किये बगैर।

भारतीय समाज के सन्दर्भ में विचार करें, तो देखेंगे कि, एक ज़माना था जब ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों से सामान्य जनमानस को दूर रखा गया, फिर एक ज़माना ऐसा आया जब भारतीय समाज में से विज्ञान लगभग गायब सा हो गया, उसका स्थान कलात्मकता ने लेना आरम्भ कर दिया (किसी भी एक भास्कराचार्य, वाराहमिहिर, आर्यभट्ट, रामानुजन, बोस, रमन आदि का नाम मुग़ल सल्तनत में सुनाई नहीं पड़ता)। इसके बाद एक ज़माना आया (यूरोप में

---

[1] आशीष नंदी के एक साक्षात्कार से उद्धृत – 'समयान्तर', अंक : 5, फरवरी 2004, पृष्ठ 39.

खासकर– इंग्लैंड में, 1760 ई. के बाद। भारत में कह लें लगभग इसके भी 100 वर्षों बाद यानि 1860 ई. के बाद) जब विज्ञान को प्रौद्योगिकी और फिर उद्योग से जोड़ दिया गया। चिन्तन और दर्शन के धरातल को छोड़कर विज्ञान कारखानों में जा बैठा और अब विज्ञान से वही काम लिया जाने लगा जिससे अधिकाधिक उत्पादन हो सके और साम्राज्यवादी शक्तियों की बाज़ार और अपने उपनिवेशों पर पकड़ और मज़बूत हो सके। इस प्रक्रिया में हुआ यह कि, विज्ञान जन–सामान्य की अभिरुचि का विषय न रह सका और परिणामस्वरूप विज्ञान के विकास में जन सामान्य की भागीदारी उत्तरोत्तर कम होती गई और इसका सीधा परिणाम वही हुआ जो होना था–जनता का दुःख–दर्द, उसकी चिन्तायें विज्ञान की प्रगति का नियामक कारक न बन सकीं और विज्ञान का स्वतन्त्र और अवैज्ञानिक विकास होता रहा। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि आज हमारे देश में विज्ञान की प्रयोगशालाओं में बहुत कुछ हो रहा है, हम अंतरिक्ष तक की सैर कर आये हैं और आगे भी बड़ी–बड़ी योजनायें हैं, युद्धास्त्रों, पर्यावरण आदि–आदि पर पक्ष–विपक्ष में तमाम तरह की चर्चायें होती रहती हैं लेकिन "उस अनुपात में समाज के भीतर वैज्ञानिक चेतना नहीं दिखती है।"[1] भारतीय समाज में विज्ञान के विकास और आम वैज्ञानिक चेतना के विकास के बीच यह खाई क्यों पैदा हुई ? –

इसके सम्भावित कारणों की और अधिक जाँच–पड़ताल आगे की जा रही है।

"The colonizers were fully aware of the importance of science as a very effective instrument of colonization and control. Their concept

---

[1] डॉ. बी.बी. कृष्ण (अध्यक्ष, साइंस पॉलिसी सेन्टर, जे.एन.यू.) के साक्षात्कार से उद्धृत। 'समयान्तर' अंक : 5, फरवरी 2004, पृष्ठ 63.

of science was closely related to the needs of the empire."[1]

औपनिवेशीकरण तथा सत्ता पर नियन्त्रण के लिए एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावी अस्त्र के रूप में, अंग्रेज़, विज्ञान से भली–भाँति परिचित थे। विज्ञान सम्बन्धी उनकी अवधारणा सीधे–सीधे अंग्रेज़ी साम्राज्य के हितसाधन के अनुरूप और अनुकूल थी, और चूँकि, व्यापार तथा राजनीति के मिले–जुले तथा एक दूसरे पर निर्भर स्वरूपों की मदद से वे भारत पर शासन कर रहे थे इसलिए विज्ञान को उन्होंने व्यापारोन्मुख बनाने का भरपूर प्रयास किया और सफल भी हुए तथा अंग्रेज़ों ने यह भी ध्यान रखा कि विज्ञान का यह ज्ञान अनायास ही बिना उनकी कृपा और इच्छा के, भारतीयों को न मिल सके। इसके लिए उन्होंने ऐसी शिक्षा नीतियाँ तैयार कीं जिससे विज्ञान– विषय आम भारतीयों की रूचि का विषय ही न रह गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि, पठन–पाठन हेतु विद्यालयों/पाठशालाओं में ज्ञान–विज्ञान की भाषा अंग्रेज़ी हो, अंग्रेज़ों की शिक्षा नीति (मैकॉले, 1833 ई.) का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। इतना ही नहीं बेहतर तो उन्होंने यही समझा कि विज्ञान की शिक्षा भारतीयों को दी ही ना जाये।

"The colonial government at first ignored science education."[2]

इसके अतिरिक्त उन्होंने हमारी अपनी ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों और उनकी परम्पराओं का जमकर मज़ाक उड़ाते हुए भारतीयों के मन में इनके प्रति एक स्वाभाविक अनुत्साह भरने की भी चेष्टा की। वे कहा करते थे कि भारतीय ज्ञान–विज्ञान इतना पुराना और बूढ़ा हो गया है कि उसमें से चमक जा चुकी है, उसे पिछड़ेपन और गैर आधुनिकता ने ग्रस लिया है।

---

[1] दीपक कुमार–'साइन्स एण्ड द राज (1857 ई.–1905 ई.)', ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, तीसरा पुनर्मुद्रण– सन् 2000, पृष्ठ 228.

[2] वही; पृष्ठ 228.

"India is too old to be rational ... only the litmus test of British colonialism will usher the sub-continent into rationalism and modernity."[1]

विज्ञान का विकास, औपनिवेशिक युग में सीधे–सीधे राज्य–शक्ति के दिशा–निर्देशों का गुलाम रहा है। उस समय स्वाभाविक रूप से अंग्रेज़–विज्ञानवेत्ता ही भारत में वैज्ञानिक विकास में सक्रिय रहे। प्रशासन के अधिकाधिक हस्तक्षेप के कारण वैज्ञानिकों और विषय में रूचि लेने वाले चिन्तकों ने ऊबकर स्वायत्त वैज्ञानिक गोष्ठियों के संस्थापन और संचालन का दायित्व संभाला। यह सब उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हो रहा था।

अधिकाधिक प्रशासनिक हस्तक्षेप से विज्ञान के विकास को जो धक्का पहुँच रहा था उससे अंग्रेज भी परिचित हो चले थे। उन्होंने इसे अपनी प्रतिष्ठा में आँच समझने के क्रम में कई वैज्ञानिक समितियों की स्वायत्तता को मंजूरी दे दी थी।

भारत में वैज्ञानिक चेतना के विकास का यह सर्वोत्तम समय था। यह वही समय था जिसमें कुछ अंग्रेज वैज्ञानिकों ने, जो भारत में रह रहे थे, भारतीय ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों पर स्वतन्त्र भाव से उदारतापूर्वक विचार कर नये और महत्वपूर्ण काम करने के लिए प्रेरित हुए और कहने में कोई संकोच नहीं कि इससे भारतीय जन–समुदाय को निश्चित रूप से बहुआयामी लाभ पहुँचा। चर्चा को दुरूह बनाने से बचने तथा अनावश्यक विषयान्तर की संभावना को टालने के लिए यहाँ इन वैज्ञानिकों के योगदानों की विस्तृत चर्चा न कर केवल सूचना के लिए संकेत करना चाहूँगा कि थॉमस ओल्डहैम (***Thomas Oldhamm***) तथा

---

[1] दीपक कुमार–'साइन्स एण्ड द राज (1857 ई.–1905 ई.)', ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, तीसरा पुनर्मुद्रण– सन् 2000, पृष्ठ 230.

रॉनल्ड रॉस (***Ronald Ross***) दोनों औपनिवेशिक काल के ही प्रसिद्ध जन्तु वैज्ञानिक थे और इन्होंने क्रमशः जननांकीय ***(Demographic)*** तथा मलेरिया संवाहक प्रोटोज़ोआ ***(Malaria vector)*** सम्बन्धी अध्ययन में अपना योगदान दिया। रॉनल्ड रॉस के मलेरिया वेक्टर सम्बन्धी अध्ययन से उस समय भारत में मलेरिया की रोकथाम में विशेष मदद मिली।

यह तो रही संक्षिप्त चर्चा जिसमें स्वायत्त वैज्ञानिक समितियों के गठन के लिए उत्तरदायी कारक तथा अंग्रेजों द्वारा भारतीय ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों तथा विशेषकर भारतीयों के लिए कुछ भला करने की मंशा से अंग्रेजों ने आगे क़दम बढ़ाया। भला कितना हुआ या नहीं, यह एक अलग विवेचन का विषय है, लेकिन इतना परिवर्तन तो भारतीयों में अवश्य हुआ कि वे हतोत्साह और हीन मनोभावना के संकीर्ण और पीड़ादायक दायरे से बाहर निकलकर अपने ज्ञान–विज्ञान पर लिखने पढ़ने लगे, अपनी भाषा में विज्ञान की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा और मौलिक–अमौलिक (अनुवाद कार्य) सभी प्रकार के प्रयास शुरू हो गये। एक महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह रही कि अनेक ऐसी भारतीय प्रतिभायें इस संकट काल में सामने आई जिनका काम न सिर्फ अंग्रेजों के काम से गुणात्मक रूप में भिन्न था बल्कि दूरगामी प्रभाव वाला था। ऐसी प्रतिभाओं में कुछेक नाम इस प्रकार हैं–

(1) मास्टर रामचन्दर (2) शुभाजी बापू (3) ओऽकार भट्ट (4) जगदीश चन्द्र बोस (5) आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय (6) अक्षय दत्त आदि।

ये सभी महानुभाव किसी न किसी रूप में, अभी मैं ऊपर जिन, स्वायत्त समीतियों, की चर्चा कर रहा था से जुड़े हुए थे। पुनः केवल सूचना के लिए बता दूँ कि ऐसी स्वायत्त समीतियों में कुछेक जो अत्यन्त ही प्रभावशाली तरीके से काम कर रही थीं उनमें से प्रमुख समीतियों के नाम इस प्रकार हैं–

(1) 'अलीगढ़ साइन्टिफ़िक सोसायटी', इसके संस्थापक सैय्यद अहमद खान थे। इसकी स्थापना 1864 में हुई थी।

(2) 'बिहार साइन्टिफ़िक सोसायटी', इसके संस्थापक सैय्यद इम्दाद अली थे। इसकी स्थापना 1868 में हुई थी।

(3) 'इण्डियन असोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइन्स' 'विज्ञान के विकास के लिए भारतीय संगठन', इसकी स्थापना 1876 में हुई थी। इसके बारे में खास बात यह है कि यह पूर्णतः भारतीय प्रबन्ध समीतियों द्वारा संचालित वैज्ञानिक संस्था थी। कहीं से भी किसी प्रकार की सरकारी मदद इसे प्राप्त नहीं थी।

"In 1876, M.L. Sarkar established the Indian Association for the Cultivation of Science. This was completely under Indian management and without any government aid or patronage."[1]

इतना ही नहीं 1887 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी मद्रास में अपने तृतीय अधिवेशन में, जो बदरूद्दीन तैय्यबजी की अध्यक्षता में बुलाया गया था, पहली बार "भारतीयों को तकनीकी शिक्षा" की बात उठाई।

"In its third session (1887), the Indian National Congress took up the question of technical education and has since then passed resolutions on it every year."[2]

1893 में पुनः कांग्रेस ने सरकार से माँग की कि भारत में चिकित्सा–शास्त्र की शिक्षा के लिए एक ऐसी संस्था खोली जाए जिसमें भारतीय

---

[1] इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ.एस.टी–1 इग्नू, पृष्ठ 46.

[2] वही; पृष्ठ 47.

प्रतिभाओं को समुचित स्थान मिल सके और इन प्रतिभाओं के साथ न्याय हो सके।

"In 1893, the congress passed a resolution asking the government to raise a scientific medical profession in Indian by throwing open fields for medical and scientific work to the best talent available and indigenous talent in particular."[1]

इसी के साथ 1904 ई. का विश्वविद्यालय अधिनियम पारित होता है तथा जमशेदजी टाटा के सहयोग से 1909 ई. में भारतीय विज्ञान संस्थान (***Indian Institute of Science, IISc.)*** की स्थापना बैंग्लूर में होती है। आज, यह देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्थाओं में से एक है। फिर इसके बाद 1914 ई. में भारतीय विज्ञान कांग्रेस संगठन ***(Indian Science Congress Association ISCA)*** भी अस्तित्व में आ जाता है और फिर इसके बाद से भारत में, सांगठनिक स्तर पर, विज्ञान के विकास को पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। तब से लेकर आज तक कितनी ही वैज्ञानिक संस्थाओं, सभाओं, गोष्ठियों का संस्थापन हो चुका है और हम सब इन पचपन–छप्पन वर्षों की छोटी अवधि में भारत में वैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित इनके योगदानों से अवगत हैं। अभी तत्काल इन सबकी चर्चा करने का समय नहीं है।

कहना अब यह है कि इन तमाम तरह की घटनाओं जिनकी चर्चा ऊपर की गई है की वजह से भारतीयों में विज्ञान के प्रति अतिरिक्त रूझान, उत्साह और समर्पण की भावना का विकास होना बहुत स्वाभाविक था। सो हुआ भी। और परिणाम यह हुआ कि अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की कमी खलने लगी क्योंकि वे लोग जिन्हें अंग्रेज़ी और फ़ारसी नहीं आती थी, केवल हिन्दी या उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषायें यथा बाँग्ला, असमिया आदि ही आती थी के लिए,

---

[1] इमर्जेंस ऑव मॉडर्न साइन्स एफ.एस.टी–1 इग्नू, पृष्ठ 46.

विज्ञान में कुतूहलवश लाख रूचि होने के बावजूद भी लाचारी का ही सामना करना पड़ता था। इस समस्या की ओर शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने 'भूगोल हस्तामलक' की भूमिका में संकेत किया है तथा मैंने भी यथास्थान इसी अध्याय में 'भूगोल' हस्तामलक का संदर्भ लेकर इस समस्या को प्रकाश में ला दिया है। इसी संदर्भ में 1886 ई. में बालकृष्ण भट्ट की यह चिन्ता भी देखते चलिए–

"यह विदेशी ग्रन्थ चाहे किसी विषय के हों किन्तु अपने यहाँ के उस विषय पर अच्छी तरह लिखा गया हो तो मानो हम लोगों से यह प्रश्न करता है कि तुम्हारे यहाँ इस तरह के ग्रन्थ हैं? फिर यदि किसी ग्रन्थकार ने विदेशी बातों की खोज में कुछ लिखा है (.....) तो मानों वे ग्रन्थ हम हिन्दुस्तानियों को लज्जित करते हैं कि तुम कदापि हमारे बराबर होने लायक नहीं हो। क्योंकि x x x जब तुम्हें अपने ही यहाँ के घर की खबर नहीं तो दूसरे को क्या सहायता पहुँचा सकते हो?"[1]

कहना न होगा, भट्ट जी की यह चिन्ता उस समय के जागरूक और शिक्षित व्यक्तियों की आम चिन्ता थी। लोगों को ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अपनी भाषा में साहित्य निर्माण की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। इस दिशा में, प्रारम्भिक स्तर पर शुरूआत, पाठशालाओं/मदरसों के लिए विज्ञानादि विषयों पर छोटी–छोटी पाठ्यपुस्तकों की रचना के रूप में हुई।

भारतेन्दु युग (1850 ई.–1900 ई.) में हिन्दी साहित्य में विज्ञान लेखन की चर्चा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द के 'भूगोल हस्तामलक' और विद्यांकुर' के बिना अधूरी समझी जायेगी। ये दोनों पुस्तकें बच्चों में विज्ञान के प्रति रूचि पैदा करने के उद्देश्य से 'सरकारी हुक्म' के मुताबिक पाठ्यपुस्तकों के रूप में तैय्यार करवाई गई थीं। इन दोनों ही पुस्तकों में अपने–अपने ढंग से विज्ञान के कुछ रोचक

---

[1] सत्य प्रकाश मिश्र सम्पादित 'बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन' एन.बी.टी., 1995, पृष्ठ 38.

और महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। ये दोनों ही पुस्तकें शिवप्रसाद जी ने नागरी लिपि में लिखी है।

'भूगोल हस्तामलक' और 'विद्यांकुर' की भूमिका देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैसे तो ये पुस्तकें विशेष तौर पर बालकों के लिए ही रची गई थीं किन्तु नागरी लिपि में और सरल भाषा में विज्ञान की पुस्तकों/लिखित सामग्रियों का उस समय सर्वथा अभाव होने के कारण ये पुस्तकें विषय में रूचि लेने वाले किसी भी उम्र के पाठक के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हुई होंगी।

"प्रगट हो कि हमने इस ग्रन्थ को आरम्भ करने के लिए लेखनी उठाई तो मन का यह संकल्प था कि एक छोटी सी पुस्तक ऐसी रचें जिससे बालकों को यह सारा भूगोल हस्तामलक हो जाये; पर होते–होते विस्तार बहुत बढ़ गया, चार सौ पृष्ठ की इतनी बड़ी पुस्तक में भी पूरा न पड़ा और केवल एशिया का वर्णन होने पाया। ..... यदि बालक भिन्न युवा और वृद्ध भी इस ग्रन्थ को पढ़ेंगे तो निश्चय है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न जाएगा; वरन् हमारे देश के राजाबाबू और महाजनों को, जो हिन्दी छोड़कर और कुछ भी नहीं जानते और न उनकी ऐसी अवस्था है कि पाठशाला में जा सकें, अब अंग्रेजी और फारसी सीखें यह ग्रन्थ बड़ा ही उपकारी होगा।"[1]

ऊपर की रेखांकित पंक्तियों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से एक बात, जिसकी ओर पहले भी संकेत किया गया कि, उस समय तक हिन्दी में ज्ञान–विज्ञान पर प्रकाशित सामग्री का सर्वथा अभाव रहा होगा, और भी स्पष्ट हो जाती है। शिवप्रसाद जी ने साफ–साफ कहा है कि "जो हिन्दी छोड़कर और कुछ भी नहीं जानते और न उनकी ऐसी अवस्था है कि पाठशाला में जाके अब

---

[1] वीरभारत तलवार सम्पादित 'राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द : प्रतिनिधि संकलन' एन.बी.टी., सन् 2004 (उपोद्धात् : भूगोल हस्तामलक–पहला अनुच्छेद, अध्याय 1)

अंग्रेजी और फारसी सीखें, यह ग्रन्थ बड़ा ही उपकारी होगा'' कहने का मतलब यह कि अंग्रेज़ी और फ़ारसी में तो ज्ञान–विज्ञान पर लिखित और प्रकाशित सामग्रियाँ अवश्य ही रही होंगी किन्तु हिन्दी में ऐसी सामग्रियों के अभाव से केवल हिन्दी जानने वालों की पहुँच से वे बाहर भी रही होंगी, इसलिए यह ग्रन्थ विशेषकर (भूगोल हस्तामलक) उन्हें समर्पित है जो फ़ारसी और अंग्रेज़ी नहीं जानने के कारण ज्ञान–विज्ञान की बातों से कुछ दूर हैं। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का यह प्रयास इस दृष्टिकोण से निश्चित ही सराहनीय और स्तुत्य है।

अब विद्यांकुर की भूमिका की कुछ पंक्तियाँ देखिये –

''शिमला में विलियम एडवार्ड्स के मातहत काम करते हुए पहाड़ी रियासतों में उनके स्कूलों के लिए मैंने चैम्बर की 'रूडिमेण्ट्स ऑफ नॉलेज' और 'इन्ट्रोडक्शन टू दी साइंसेज़' के शुरू के कुछ पन्नों को अपना आधार बनाते हुए नागरी लिपि में दो छोटी किताबें तैयार की थीं – 'मालूमात' और 'भूगोल'। ..... यह किताब (मालूमात) नागरी में 'विद्यांकुर' और फ़ारसी लिपि में 'हकाईकुल मौजूदात' के नाम से देहाती स्कूलों में पहले रीडर के रूप में इस्तेमाल होती रही है। मुझे पहली किताब लिखने को कहा गया।''[1]

विद्यांकुर की भूमिका के इस अंश से यह बात और भी स्पष्ट होती है कि उस समय (1876 ई. में जब यह भूमिका लिखी गई थी) हिन्दी में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का कार्य बच्चों के लिए छोटी–छोटी पाठ्य पुस्तक बनाकर शुरू किया गया। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि, ये पुस्तकें ऐसा नहीं कि बाल–विज्ञान–साहित्य पर आरम्भिक पुस्तकें हों। बालोपयोगी–विज्ञान–साहित्य पर जो पहली पुस्तक का ज़िक्र मिलता है वह सन् 1873 ई. की एक

[1] वीरभारत तलवार सम्पादित 'राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द : प्रतिनिधि संकलन' एन.बी.टी., सन् 2004, पृष्ठ 88.

पुस्तक 'शुद्धि दर्पण'* है। गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद से छपी इस पुस्तक के लेखक विधिचन्द्र हैं। यह पुस्तक बच्चों में स्वास्थ्य रक्षा और सफाई जैसे विषय के प्रति जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से लिखी गई है। 1876 ई. में विद्यांकुर के बाद हिन्दी में बच्चों के लिए विज्ञान पर एक और पुस्तक का ज़िक्र मिलता है, वह है, 1895 ई. में छपी 'जीव–जन्तु प्रथम भाग'। यह पुस्तक बिहार बंधु प्रेस, बांकीपुर से छपी थी व इसके लेखक लक्ष्मीनाथ शर्मा थे।

भारतेन्दु युग (1850 ई.–1900 ई.) में हिन्दी में विज्ञान–विषयक साहित्य के अन्तर्गत कैसी भाषा का प्रयोग होता रहा तथा आम रूचि के कौन–कौन से विषय विज्ञान–साहित्य में स्थान पाते रहे इसका एक नमूना 'विद्यांकुर की भूमिका' तथा पाठ में दिखाई पड़ता है। सच कहें तो 'विद्यांकुर' का महत्व ही इस बात में है कि, इसके माध्यम से उस समय (भारतेन्दु युग में) हिन्दी में विज्ञान लेखन से जुड़ी हुई भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों और चुनौतियों पर प्रकाश पड़ता है। इन बातों को और ठीक से समझने के लिये यहाँ आगे 'विद्यांकुर' की भूमिका तथा उसके पाठ की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

<u>विद्यांकुर की भूमिका तथा उसके पाठ की संक्षिप्त विवेचना</u>

विद्यांकुर का प्रणयन शिवप्रसाद जी ने नागरी में 'देहाती–स्कूलों' के लिए 'पहले रीडर' की विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के रूप में किया था। यह पुस्तक संवाद–शैली में लिखी गई थी। 'उस्ताद' और 'शार्गिद' के परस्पर संवाद के माध्यम से विज्ञान के बहुत से महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। अभी आगे इन पक्षों पर संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की जायेगी लेकिन इससे पहले एक समस्या, जिसकी ओर 'सितारे हिन्द' ने भी ध्यान खीचना चाहा है उसके बारे में दो शब्द।

---

* आर्य भाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारणी सभा, काशी) की पुस्तक सूची के खण्ड–1 के पृष्ठ 174.

"देशी भाषा के किसी अच्छे कोश के अभाव में यह बताना कुछ मुश्किल है कि किस सिद्वान्त के आधार पर शब्दों का चुनाव किया गया है।"[1]

यह जो मानक कोश की कमी थी वह उस समय अर्थात् उन्नीसवीं सदी में हिन्दी में विज्ञान लेखन के विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा थी। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य अपने 'बीज–वपन काल' या 'प्रथम उत्थान काल' के समय अपना विस्तार अनुवाद के माध्यम से कर रहा था, जो कि बहुत स्वामाविक था। हिन्दी में उस समय लिखने वाले अधिकांश विज्ञान लेखक अपने लेखों में हिन्दी में अनगढ़ वैज्ञानिक शब्दावलियों के साथ उनके अँग्रेजी प्रतिस्थाप्य रख दिया करते थे जो पुनः एक समस्या थी या फिर सीधे–सीधे अँग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली का ही प्रयोग करते थे, उनके हिन्दी प्रतिस्थाप्य देते ही नहीं थे। इस कारण हिन्दी पाठकों के बीच अथवा हिन्दी प्रेमियों के बीच वैज्ञानिक चेतना के प्रसार की मूल समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती थी।

कुछ कुशल लेखक/साहित्यकार/चिन्तक/विचारक अनगढ़ हिन्दी शब्दावलियों से बचने के लिए, अमुक शब्द की हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत कर उसका अँग्रेज़ी प्रतिस्थाप्य लिखकर यह कह दिया करते थे कि अमुक शब्द को अँग्रेज़ी में यह (अमुक शब्द की अँग्रेज़ी प्रतिस्थाप्य) कहते हैं। इस सन्दर्भ में बालकृष्ण भट्ट के मनोविज्ञान नामक लेख से एक नमूना देखिए–

"साधारण रीति पर विचार करने से निश्चय होता है कि हम लोगों का समस्त ज्ञान दो प्रधान भागों में विभक्त है, पहिला मूर्ति विषयक अर्थात् जड़ जगत सम्बन्धी दूसरा अमूर्ति विषयक अर्थात् अन्तर्जगत सम्बन्धी। अँग्रेज़ी में इन दोनों को ***Objective*** और ***Subjective*** ज्ञान कहते है,....।"[2]

---

[1] राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द': प्रतिनिधि संकलन, सन् 2004 पृष्ठ. 89.

[2] बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, सन् 1996, पृष्ठ 5.

इसी प्रकार अन्य कई लेखक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलियों के हिन्दी प्रतिस्थाप्यों की अनुपलब्धता को टाल जाने के लिए लेखों को हास्य–व्यंग्य शैली में लिखते रहे और कह देते थे अंग्रेज़ लोग अमुक शब्द को यह (कोई अंग्रेज़ी शब्द) कहते हैं। विशेषकर विज्ञान सम्बन्धी लेखों में यह पद्धति बहुत अपनाई जाती थी। महेन्दुलाल गर्ग (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के संधिकाल के प्रमुख विज्ञान लेखक) का 'सरस्वती' (सितम्बर, 1904 ई.) में 'पेट की आत्मकहानी' नामक लेख से एक नमूना देखिये–

पेट कहता है–

"शरीर नामक टापू के बीचों–बीच मेरी बस्ती है। आस–पास और भी कई बस्तियाँ हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन–देन रहता है। x x x मेरे एक गाँव का नाम 'आमाशय' है जो 'ठाकुर पाचन सिंह' जी का सदर मुकाम है। x x x आमाशय से नीचे एक और पहाड़ी है जिसको अंग्रेज लोग पैंक्रियास' कहते हैं।" आज हमें पैंक्रियास का हिन्दी प्रतिस्थाप्य 'अग्नाशय' मालूम है। किन्तु विरले ही कहीं प्रयुक्त होता होगा।

इसी प्रकार कुछ लेख ऐसे भी देखने में आये हैं जिनमें वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलियों के हिन्दी रूपान्तरों की कमी को पूरा करने के लिए लेखक ने स्वयं ही एक नया शब्द गढ़ लिया था फिर किसी दूसरी भाषा यथा संस्कृत या अरबी–फ़ारसी से उस वैज्ञानिक परिभाषिक शब्द का कोई समतुल्य उठाकर रख दिया। आज उन तमाम शब्दों के हिन्दी समतुल्य नितान्त भिन्न हैं। गुलेरी जी (पं. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी') का 'सरस्वती' (फरवरी–मार्च 1905 ई.) में 'आँख' शीर्षक से छपे लेख में से उद्धृत कुछ वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके हिन्दी प्रतिस्थाप्य देखिये–

गुलेरी जी के शब्द	अंग्रेज़ी वैज्ञानिक शब्दावली	वर्तमान हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य में प्रचलित प्रतिस्थाप्य
ताल	Lens	लेंस
अंशुनाभि	Focus	नाभि
नतोदर	Concave	अवतल
त्रिपार्श्व	Prism	प्रिज़्म
उन्नतोदर	Convex	उत्तल

इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि हिन्दी में ज्ञान राशि के कोश को समृद्ध करने में हिन्दी के उन्नायकों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, विशेषकर वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों के प्रसंग में।

इस परिभाषिक शब्दावली की समस्या की ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में सुधीजनों का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि–

"हिन्दी भाषा के द्वारा ही सब प्रकार के वैज्ञानिक विषयों का शिक्षा की व्यवस्था का विचार भी अब लोगों के चित्त में उठ रहा था। पर बड़ी भारी कठिनता परिभाषिक शब्दों के संबंध में।"[1]

अब प्रश्न यह उठना चाहिए कि पारिभाषिक शब्दों की इन 'बड़ी भारी कठिनता' के निवारण के लिए हिन्दी उन्नायकों ने क्या किया? उत्तर के रूप में और केवल सूचना मात्र देने के लिए बता देना चाहूँगा कि विज्ञान सम्बन्धी

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; संस्करण संवत् 2054 वि. पृ. 265.

पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तर का एक वृहद् कोश– 'वैज्ञानिक कोश' नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने सन् 1906 ई. में प्रकाशित किया यह कोश बाबू श्याम सुन्दर दास के सम्पादन सहयोग से प्रकाशित किया गया था। इस 'वैज्ञानिक कोश' का महत्व तीन कारणों से है। एक तो यह कि उस समय नवोदित विज्ञान लेखकों को वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिन्दी रूपान्तर में एकरूपता लाने में पर्याप्त सहायता मिली जिसके कारण आगे चलकर उस युग की महत्वपूर्ण पत्रिका 'सरस्वती', जो विज्ञानादि विषयों पर नये–नये किस्म के लेख आमंत्रित करती थी, के सम्पादक (1903 ई.–1920 ई. तक) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लेखकगण अपनी सधी हुई भाषा (पारिभाषिक, वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तरण के प्रसंग में भी) और विषय के प्रति अपेक्षित गम्भीरता, रूचि और परिपक्वता के द्वारा रिझाने में सफल हो सके तथा 'सरस्वती' में उनके लेखों को उचित स्थान मिलने लगा और हिन्दी का भण्डार बढ़ने लगा।

दूसरी बात वैज्ञानिक कोश के महत्व के बारे में यह है कि उन्नसवीं सदी के अवसान और बीसवीं सदी के नवोदय के बीच हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य जब अपनी शैशवावस्था में था उस समय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की निधि में 'कोहिनूर' जमा करके एक प्रकार से हिन्दी –विज्ञान साहित्य के अक्षय निधि निर्माण का विधिवत् श्री गणेश किया।

तीसरी और कदाचित् कुछ अधिक महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह है कि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'वैज्ञानिक कोश', उस समय के हिन्दी सेवियों की विज्ञान के प्रति रूचि, जागरूकता और उसे विधिवत् हिन्दी साहित्य का अंग बनाने की ललक तथा इस कार्य में मार्ग आने वाली बाधाओं अथवा कठिनाइयों से मुक्ति पाने की चिन्ता तथा समाधान हेतु एक व्यवस्थित चिन्तन और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के विकास, प्रचार और प्रसार के प्रति उत्साह और समझ–बूझ का, परिणाम है। जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दी साहित्य–कर्मी विज्ञान के प्रति एक स्वाभाविक अनिच्छा भाव रखते हैं उन्हें आज

से लगभग सौ साल पहले प्रकाशित इस 'वैज्ञानिक कोश' के प्रकाशन उद्देश्य पर विचार करना चाहिए। हाँ, आज के हिन्दी साहित्य कर्मियों में यह स्वाभाविक अनिच्छा अवश्य ही देखने को मिलती है। हम समझ सकते हैं कि इस संदर्भ में हम अपने सौ साल पहले के मित्रों से कितना पीछे हैं।

इस प्रकार जिस 'मुश्किल' की ओर 'सितारेहिन्द' ने 1876 ई. में विज्ञान–विषयक पाठ्यपुस्तक विद्यांकुर (जिसकी चर्चा में ही यह सारा प्रसंग उठाया गया) में संकेत किया कि–'देशी भाषा के किसी अच्छे कोश के अभाव में x x x।'[1] तथा जिसे अन्य लेखकगण भी महसूस ही करते रहे होंगे का समाधान 30 वर्षों बाद नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने 1906 ई. में 'वैज्ञानिक कोश' के प्रकाशन के माध्यम से कर दिया था।

थोड़े से आवश्यक विषयान्तर के बाद अब पुनः लौटते हैं मूल विषय – 'विद्यांकुर' संबंधी चर्चा की ओर। जैसा कि शुरू में ही कहा गया कि शिवप्रसाद जी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी रूपान्तर की समस्या से परिचित थे और उन्हें चूँकि विद्यांकुर की रचना 'देहाती स्कूलों' के बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में करनी थी इसलिए पारिभाषिक शब्दावलियों की समस्या इस अर्थ में कुछ और कठिन हो चली थी। इसलिए शिवप्रसाद जी ने विद्यांकुर की भूमिका में ही लगभग 64 हिन्दी वैज्ञानिक शब्दों की सूची और उनके उर्दू समतुल्यों की सूची दे दी है। ऐसा करने के पीछे सरकारी दबाव तो रहा ही होगा साथ ही उस समय आम जनता के बीच बोलचाल में इन उर्दू समतुल्यों का कदाचित् अधिक चलन रहा होगा। प्रस्तुत है, उस सूची सें उद्धृत कुछ शब्दों के नमूने–

(इस सूची में शब्दक्रम मूल सूची से भिन्न है। इस सूची में कुल 20 महत्वपूर्ण शब्दों को ही सम्मिलित किया जा रहा है।)

---

[1] राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' प्रतिनिधि संकलन; पृष्ठ 89 से.

1. परमाणु	–	ज़र्रा
2. आमाशय	–	मेदअ
3. तत्व	–	उन्सुर
4. इंद्रिय	–	हवास
5. गणित	–	रियाजी
6. सरलरेखा	–	मुस्तकीम खत
7. चतुर्भुज	–	मुरब्बा
8. शून्य	–	ख़ला
9. रसायन	–	कीमिया
10. नक्षत्र	–	नवाबित

11. ग्रह	–	सय्यारा
12. बृहस्पति	–	बसप
13. उपग्रह	–	कमर
14. आकाश गंगा	–	कहकशां
15. अंक	–	हिन्दिसः
16. ध्रुव	–	कुतुब
17. महाद्वीप	–	बर्रे आज़म
18. आकर्षण शक्ति	–	कूवते जाज़ेबः
19. वर्ग	–	मुरब्बा
20. समकोण	–	ज़ाबिया क़ाइया

इस सूची में दो शब्द आये हैं वर्ग (19) और चतुर्भुज (7) इन दोनों के लिए एक ही उर्दू समतुल्य 'मुरब्बा' आया हुआ है। चुटकी लेने वाले 'वर्ग' और 'चतुर्भुज' के लिए 'मुरब्बा' सुनकर चुटकी भी ले सकते हैं। गणित के संदर्भ से तो यह रूपान्तर निश्चित रूप से भ्रामक और दोषपूर्ण है। कारण यह है कि, वर्ग और चतुर्भुज दो भिन्न आकृतियां हैं बल्कि यह कहें कि, चतुर्भुज चार भुजाओं वाली ज्यामितीय आकृतियों का वह परिवार है जिसमें आयत, समलम्ब, समान्तर–चतुर्भुज आदि आते हैं। वर्ग इसी परिवार का एक सदस्य है। स्पष्ट है कि प्रत्येक

वर्ग एक चतुर्भज है जबकि प्रत्येक चतुर्भुज एक वर्ग नहीं हो सकता, वह आयत, समलम्ब कुछ भी हो सकता है, इसलिए वर्ग और चतुर्भुज के लिए केवल एक शब्द 'मुरब्बा' लिख देने से शब्दों का तकनीकी भेद दूर नहीं हो पाता बल्कि अवधारणा के स्तर पर एक कठिनाई ही पैदा होती है।

विद्यांकुर 'उस्ताद–शागिर्द' की संवाद शैली में लिखी गई है। प्राप्त स्रोत के अनुसार विद्यांकुर का 'पहला हिस्सा' 'पैदाइश' नामक शीर्षक से शुरू होता है और प्राणि–विकास की संक्षिप्त गाथा कहते हुए चरम को प्राप्त होता है। अकस्मात् एक नितान्त ही अटपटा सा विषय शुरू हो जाता है जिसका सम्बन्ध पुस्तक में वर्णित अन्य विषयों से बिल्कुल भी नहीं है। शीर्षक है– 'राज'। 'राज' के अन्तर्गत क्या लिखा गया है–एक नमूना देखिए–

"राज कई किस्म का होता है। x x x हर राज का जुदा निशान रहता है और वही जहाज, किलअ, फौज के झंडे पर देखकर पहचान लिया जाता है। राज से जिस किसी की इज़्जत बढ़ाई जाती है.....।"[1]

'राज' वाले शीर्षक को छोड़कर बाकी सभी शीर्षकों का सम्बन्ध विज्ञान की किसी न किसी शाखा से है। 'राज' शीर्षक अनायास ही आ गया या फिर आज जिसे हम 'पॉलिट्कली करेक्ट' (***Politically correct***) होना कहते हैं उससे इसका कोई सम्बन्ध बनता है, यह विवेचन मैं इस विषय में रूचि लेने वाले व्यक्तियों पर छोड़ता हूँ। हाँ, एक बात और इसी में जोड़ना चाहता हूँ कि 'सितारे हिन्द' ने 'ओस, पाला मेह और बादल' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा कि–

"ऊँची इमारतों को बिजली गिरने का बहुत डर रहता है। लेकिन फरंगिस्तान के अक्लमन्दों ने जिस मकान को बचाना मंजूर हो, उससे जरा ऊँची

---

[1] 'राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द : प्रतिनिधि संकलन'; सन् 2004, पृष्ठ 99.

एक लोहे की नुकीली छड़ उसके पास गाड़ देने की ऐसी तरकीब निकाली है कि बिजली सदा उसी में समाती रहती है और वह मकान बच जाता है।''[1]

पुनः केवल सूचना मात्र के लिए बता दूँ कि यह तरकीब 'फ़रंगिस्तान के अक्लमंदों' ने नहीं निकाली। यह तरकीब फ्राँस के एक भौतिक शास्त्री 'चार्ल्स ऑगस्टीन डी कूलॉम' ने सबसे पहले अपनी प्रयोगशाला को तड़ित वार से बचाने के लिए निकाली। कूलॉम का योगदान विद्युत–भौतिकी में आज किसी से भी छिपा नहीं है। आगे चलकर 'वान डी ग्राफ' महोदय (फ्राँसीसी) ने 'गोल्डलीफ़ एक्सपेरीमेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध प्रयोग के द्वारा इस तरकीब का विस्तार भौतिक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में करके क्रांतिकारी निष्कर्ष दिये।

इसके अतिरिक्त शिवप्रसाद जी ने 'पैदाइश की किस्में' बताते हुए 'जीवजन्तु' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा कि–

''जीव–जन्तु यानी इन दोनों किस्मों के जानदारों के आमाशय होता है। पर वनस्पति के नहीं होता, यही इन दोनों में बहुत बड़ा तफ़ावत है।''[2]

यह 'तफ़ावत' कोई 'तफ़ावत' (अंतर) नहीं है। कई ऐसी वनस्पतियों का ज़िक्र उस समय के सम्बन्धित अधिकांश लेखों में मिल जाता है जिनमें न सिर्फ आमाशय होता है बल्कि पाचन सम्बन्धी सभी कार्य–व्यापार जन्तुओं की ही भांति होते हैं।

शुक्ल जी निश्चित रूप से 'तफ़ावत' की इस भ्रमपूर्ण स्थिति से परिचित रहे होंगे, तभी तो उन्होंने लिखा कि–

---

[1] 'राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द : प्रतिनिधि संकलन'; सन् 2004, पृष्ठ 105.

[2] वही; पृष्ठ 94.

"जंतुओं और पौधों में मूल भेद नहीं है। ..... लोग जंतुओं में यह विशेषता समझते थे कि उनमें पाचन के लिए अलग कोठा (पेट) होता है, ... पर .... ऐसे क्षुद्र कोटि के जंतुओं का पता है जिसमें पेट, मुँह आदि नहीं होता और कई ऐसे पौधे देखे गये हैं जिनमें ये अंग होते हैं।"[1] आचार्य शुक्ल ने इन पौधों के नाम नही गिनाये हैं। केवल सूचना के लिए बता दूँ कि इन पौधों में अधिकांश अफ़्रीकी मूल के हैं और इनका आहार छोटे–छोटे कीट पतंग होते हैं। इन कीट–पतंगों को पचाकर ये नाइट्रोजन की कमी को पूरा करते हैं। इन्हें कीट–भक्षी पौधे कहते हैं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं–

* (1) घटपर्णी या पिचरप्लान्ट या नेपेन्थीज़ (***Nepenthes***)

(2) वीनस फलाई ट्रैप या डायोनिया (***Dionea***)

(3) ब्लैडर वर्ट या यूट्रीक्यूलेरिया (***Utricularia***) – जलप्लावित पौधा

(4) सनड्यू या ड्रॉसेरा (***Drosera***)

इसके अतिक्ति इसी 'पैदाइश की किस्में" शीर्षक में ही अंडज अर्थात् अंडे से जन्म लेने वाले तथा अंडे देने वाले जीवों पर चर्चा के क्रम में पाद टिप्पणी में शिवप्रसादजी लिखते हैं कि इसे (अंडज को) 'हिन्दू स्वेदज भी मानते हैं और कहते हैं कि वह खाली पसीना से पैदा होते हैं।' क्या वास्तव में शिव प्रसाद जी की धारणा के हिन्दू इतने अवैज्ञानिक विचारों वाले हाते थे कि अंडज को स्वेदज मान बैठें और उन दोनों में कोई भेद न कर पावें? इसका उत्तर भी मैं विषय में रूचि लेने वालों पर छोड़ता हूँ।

Jawaharlal Nehru University Library

---

[1] 'विश्व प्रपञ्च' भूमिका भाग पृष्ठ 20.

* डॉ. एम.पी. कौशिक – माडर्न बॉटनी, प्रकाश पब्लिकेशन सन् 2002, पृष्ठ. 857,858 और 859.

TH-11548
DISS 808.066509143 T7301 Hi

इस प्रकार मूंगा और स्पंज के बारे में शिव प्रसाद जी बच्चों को पाठ्यपुस्तक में यह बताते रहे कि ये सभी आकृतियाँ समुद्र में पाये जाने वाले कुछ खास किस्म के कीड़ों के घर हैं गोया ये निर्जीव आकृतियाँ हैं।

'मूंगा वही है जो समुद्र की थाह में एक तरह के कीड़े अपने रहने का घर बनाते हैं। स्पंज भी, जो पानी सोख लेता है और .... जो एक तरह के कीड़ों का घर है।'[1]

विज्ञान के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि मूँगा सीलेन्ट्रटा संघ के जंतुओं का कंकाल है जो एक स्थान पर जहाँ चिपक जाये वहीं सारी उम्र बिता देता है। उसी प्रकार स्पंज भी पोरीफेरा संघ का जंतु है।

'अकारज' शीर्षक के अन्तर्गत शिवप्रसाद जी ने विद्यार्थियों को यह बताया है कि 'प्लेटिनम के सिवाय सोना सबसे भारी होता है'। गलत है यह तथ्य। सबसे भारी तत्व लेड धातु है। ऐसा नहीं कि शिव प्रसाद जी जब विद्यांकुर लिख रहे थे तब तक प्लेटिनम और सोना ही सबसे भारी रहा हो और आगे चलकर लेड धातु की खोज हुई हो। लेड की खोज प्लेटिनम से 40 वर्ष पहले 1810 ई. में जर्मन वैज्ञानिक श्रोयेजर कर चुका था।

विद्यांकुर का सबसे सशक्त हिस्सा 'गर्मी' शीर्षक वाला हिस्सा है जो कि विद्यांकुर का अंतिम हिस्सा है। इसमें शिवप्रसाद जी ने गर्मी अर्थात् ऊष्मा सम्बन्धी मूलभूत सिद्धान्तों पर युक्ति–युक्त प्रकाश डाला है साथ ही ऊष्मा मापक यन्त्र अर्थात् थर्मामीटर पर भी सचित्र टिप्पणी की है।

'अपनी भाषा में विज्ञान' की पुकार ने उन्नसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में चारों तरफ ऐसा ज़ोर पकड़ लिया कि क्षेत्रीय भाषाओं, तमिल, मराठी, बंगला तथा

---

[1] 'राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द : प्रतिनिधि संकलन'; सन् 2004, पृष्ठ 103.

असमिया आदि भाषाओं में विज्ञान लेखों का अंग्रेज़ी से अनुवाद छपने लगा। कुछेक में मौलिक लेख लिखे जाने लगे। एक क्षेत्रीय भाषा से दूसरी क्षेत्रीय भाषा के बीच विज्ञान के लेखों सहित ज्ञान की अन्य शाखाओं का अनुवाद के माध्यम से आदान–प्रदान होने लगा। मैं यहाँ तत्काल इन सबकी चर्चा न करके केवल हिन्दी प्रदेश में इस लहर की चर्चा करना चाहूँगा।

आगे बढ़ने से पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मेरा कोई प्रयास, भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों या भारतेन्दु युग में हिन्दी भाषा, गद्य–साहित्य आदि के विकास सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत करने का यहाँ अभी तत्काल नहीं दीख पड़ेगा। मेरा न तो ऐसा कोई विचार है ओर न ही विषय–विशेष जिसकी चर्चा के लिए यह अध्याय बनाया गया है की ऐसी कोई माँग है। यहाँ केवल मैं भारतेन्दु युग के उन महापुरुषों, सभाओं, पत्र–पत्रिकाओं के योगदानों की ही चर्चा करना चाहता हूँ जिनके कारण हिन्दी में वैज्ञानिक –साहित्य को उस युग [भारतेन्दु यग (1850ई.–1900ई.)] में प्रतिष्ठित करने में सहायता मिली।

हिन्दी गद्य के विकास की विधिवत् शुरूआत भारतेन्दु युग में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका से होती है।

"हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चन्द्रिका' में प्रकट हुआ।"[1]

वैज्ञानिक साहित्य स्वयं को गद्य में अधिक समर्थ रूप से व्यक्त कर पाता है। इधर भारतेन्दु के प्रयास से हिन्दी गद्य का विकास और परिष्करण, और उधर (जैसा कि पिछले पृष्ठों में चर्चा की गई), अपनी भाषा में विज्ञान की

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 2054, प्रकरण 2; पृष्ठ 251

आवश्यकताओं का अनुभव, किसी मणिकाञ्चन संयोग से कम न था। बीज भी स्वस्थ, भूमि भी उर्वरा, जलवायु भी अनुकूल और भारतेन्दु, उनके सहयोगियों तथा भारतेन्दु मण्डल का परिश्रम भी ऊँचे दर्जे का, इतना सब कुछ होते हुए भला हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन कैसे ना होता? आइये अब बारी–बारी से इन महानुभावों, जिन्होंने यह सब कुछ संभव बनाया, के बारे में तथा हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन सम्बन्धी उनके योगदानों की चर्चा की जाये।

भारतेन्दु के सहयोगियों में और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य को प्रतिष्ठित करने के लिए पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र का योगदान विशेष महत्व है। पण्डित जी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सहायकों में से भी रहे हैं।

"इसके (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी क) सहायकों में से भारतेन्दु के सहयोगियों में से कई सज्जन थे– जैसे राय बहादुर, पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र, एम.ए., खड्गविलास प्रेस के स्वमी बाबू रामदीन सिंह....." ।[1]

पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र का प्रमुख योगदान गणित के क्षेत्र में है। गणित सम्बन्धी साहित्य को अंग्रेज़ी तथा संस्कृत से उठाकर इन्होंने हिन्दी में लाने का अप्रतिम प्रयास किया है। ये नागरी प्रचार में इतने लिप्त हो गये कि इन्होंने अपना उपनाम 'नागर' रख लिया। इसी अध्याय में आगे खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर, की जो विज्ञान विषयक सूची दी गई हैं उनमें इनकी पुस्तक 'गणित कौमुदी' का नाम है। वास्तव में खड्ग विलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन सिंह और ये (पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र) निकट सहयोगी थे तथा दोनों ही नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सहायकों में से थे। (देखें उद्धरण : 1)। बाबू रामदीन सिंह भी

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 2054, प्रकरण 2; पृष्ठ 264.

गणित के अच्छे जानकार थे और हिंदी में गणित साहित्य को लाने में इनका भी योगदान पर्याप्त महत्व का है इनकी पुस्तक 'क्षेत्रतत्व' पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र की गणित कौमुदी (1884 ई.) से तीन वर्ष पहले 1881 ई. में खड्ग विलास प्रेस से छपकर आ चुकी थी (देखें इसी अध्याय की खड्ग विलास प्रेस की सूची)। बाबू रामदीन सिंह अच्छे अनुवादक भी थे। अनुवाद कार्य के माध्यम से भी इन्होंने हिंदी में विज्ञान साहित्य को स्थापित किया।

इन्होंने राधिका प्रसन्न मुखर्जी की पुस्तक 'स्वास्थ्य रक्षा सचित्र' का बाँग्ला से हिन्दी अनुवाद 1893 ई. में किया जो कि खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर से छपी थी। (देखिये आगे इसी अध्याय के अन्त में खड्ग विलास प्रेस की विज्ञान पर अनूदित पुस्तकों की सूची)।

पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र ने गणित कौमुदी के चार भागों के अतिरिक्त 'पादप विटप', 'प्राकृतिक भूगोल चन्द्रिका', 'पदार्थ–विज्ञान', 'स्थिति–विद्या', 'गति–विद्या' तथा 'वायुमण्डल विज्ञान' नामक ग्रन्थों की भी रचना की (संदर्भ के लिए देखें परिशिष्ट 1)।

लक्ष्मीशंकर मिश्र और रामदीन सिंह के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों में पं. सुधाकर द्विवेदी, मनराखन लाल, त्रिलोकीनाथ सिंह, मुन्नीलाल, कुंजबिहारी लाल, गूदर सहाय, कालिकाप्रसाद सिंह, उमानाथ मिश्र, साहबप्रसाद सिंह, दामोदर गुरु, पिण्डीशंकर, लाला सीताराम बी.ए. वंशीधर पण्डित आदि अनेक ऐसे महानुभाव हैं जिन्होंने हिन्दी में गणित साहित्य को व्यवस्थित रूप में उतारा। इन सबकी तथा इनके कई सहयोगियों की रचनाओं के नाम, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष परिशिष्ट 1 में दिये जा रहे हैं। यह परिशिष्ट नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय के प्रथम खण्ड की पुस्तक को आधार बनाकर बनाया गया है। यथास्थान इसका विस्तृत परिचय परिशिष्ट 1 में मिलेगा।

गणित के अतिरिक्त लोकोपयोगी विज्ञान जैसे–स्वास्थ्य रक्षा, इंजीनियरिंग बाल–रोग–चिकित्सा, स्त्री–चिकित्सा, ज्योतिष, चिकित्सा–शास्त्र, आयुर्वेद, कामशास्त्र, पशु चिकित्सा, गृह निर्माण, खेती–बारी, कृषि–शास्त्र आदि अनेक विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर भी भारतेन्दु युग में हिन्दी में अनेक काम हुए हैं। इन सबका संदर्भ और जिक्र परिशिष्ट : 1 में कर दिया गया है।

यह तो संक्षिप्त चर्चा रही उन महानुभावों की जो भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य से सीधे–सीधे नहीं जुड़े हुए थे फिर भी हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण कर हिन्दी नवजागरण को और अधिक अर्थवान बना रहे थे। इनके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य से जुड़ी अनेक ऐसी प्रतिभाएँ भी थीं जो हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के भण्डार निर्माण में सक्रिय रहीं।

हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु मण्डल का योगदान इस दिशा में चिर स्मरणीय रहेगा।

हिन्दी–गद्य की भाषा के विकास और परिष्करण के साथ–साथ भारतेन्दु हिन्दी–साहित्य–कोश निर्माण के प्रति कितनी व्यापक और दूरदृष्टि के मालिक थे, यह उनकी प्रत्रिका हरिश्चन्द्र मैगज़ीन (सन् 1930 ई.) के 'टाइटिल पेज' को देखकर सहज ही आभास हो जाता है।

"भारतेन्दु ने 'हरश्चिन्द्र मैगज़ीन' नाम से हिन्दी की पहली विविध–विषय –विभूषित मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इसमें उन्होंने किन–किन विषयों की रचनाओं को छापने का संकल्प किया, यह इसके पहले अंक के अंग्रेजी में छपने वाले 'टाइटिल पेज' से स्पष्ट था। टाइटिल पेज इस प्रकार था–

Haris Chandra's Magazine *(A monthly journal published in connection with Kavivachan Sudha)* ***containing articles of*** *literary,* ***scientific...***

Edited by Haris Chandra.

Published by the editor Haris Chandra on the 15th of every month and printed by Lazarus and Co. at the Medical Hall Press, Benares."[1]

इस टाइटिल पेज में छपी घोषणा को पढ़कर इस बात का सहज अनुमान हो जाता है कि हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु के लिए ज्ञान–विज्ञान के सभी विषय समान रूप से महत्वपूर्ण थे तथा उनकी रूचि और गति ज्ञान की अनेक विधाओं में थी किन्तु उद्देश्य बिल्कुल साफ–केवल एक, हिन्दी की हर भाँति से सेवा करके उसकी साहित्य सम्पदा को समृद्ध करना। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी भारतेन्दु की इन उपलब्धियों से वाकिफ़ हैं।

यह सच है कि इस युग में अधिकांश विज्ञान लेखन जो हिन्दी भाषा में हो रहा था उसके सूत्रधार किसी न किसी रूप में सीधे विज्ञान विषय से ही जुड़े हुए लोग थे, और उस समय यह बहुत स्वाभाविक भी था। वस्तुतः भारतेन्दु युग हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का प्रथम उत्थान काल ही था और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की दृष्टि से तो इस काल को बीज–वपन काल कहा जा सकता है जिसकी सशक्त परिणति आगे चलकर द्विवेदी युग में होती है। फिर भी जितनी सामग्री (जिसकी कि एक विस्तृत सूची परिशिष्ट : 1 में दे दी गई है और कुछ इस अध्याय के अन्त में भी दी गई है) इस युग में विज्ञान–विषयक साहित्य के रूप में मिलती हैं, वह कम नहीं है।

हिन्दी साहित्य से जुड़े हुए लोगों में जिनकी रूचि और गति छिट–पुट ही सही किन्तु विज्ञान–लेखन में रही उनमें से बालकृष्ण भट्ट का नाम विशेष महत्व का है। बालकृष्ण भट्ट, सच पूछिये तो, कई अर्थों में भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के बीच के सेतु हैं। इनकी साहित्य रचना की जानकारी पाने के लिए धनन्जय भट्ट सम्पादित निबंधावली भाग 1–2, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी देखे जा सकते हैं। भट्ट जी इलाहाबाद

---

[1] ज्ञानचन्द जैन –'भारतेन्दु हरश्चिन्द्र : एक व्यक्तित्व चित्र', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2004, पृष्ठ 48–49.

से 'हिन्दी प्रदीप' (1877 ई.) निकालते थे। 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से इन्होंने हिन्दी की जो सेवा की वह हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों से छिपी नहीं है। मैं यहाँ भट्ट जी के दो–एक वैज्ञानिक लेखों से उद्धृत लेखांशों के नमूने पेश कर रहा हूँ–

"प्रकाश की प्रकृति अभी तक ठीक–ठीक नहीं मालूम हुई है। पूर्व समय के विद्वान समझते थे कि यह बहुत से छोटे–छोटे परमाणुओं से बनता है जो तेजोमय पदार्थ जैसा सूर्य वा जलती हुई अग्नि इत्यादि से निकला करते हैं आजकल के विद्वान ध्वनि के समान इसकी भी उत्पत्ति तरंग सदृश गति ***Waving motion*** से मानते हैं। x x x प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में 18600 मील होती है और ध्वनि एक सेकेण्ड में केवल 1100 फुट जा सकती हैं।"[1]

"यूरोप के विज्ञान–विद् सौ के लगभग ***Elementary Substance*** रूढ़ पदार्थ प्रगट कर चुके हैं। हमारे यहाँ के दार्शनिक घोरमचोर इसी परिवर्तन विमुखता के कारण पांच तत्व के आगे न बढ़े पर न बढ़े।"[2]

"किसी वस्तु के देखने, सुनने, छूने चखने व सूंघने से जो एक प्रकार का ज्ञान होता है उसे बोध (फीलिंग और सेन्सेशन) कहते हैं x x x।"[3]

आदि–आदि अनेकों ऐसे लेख या विभिन्न लेखों के बीच–बीच में उद्धरण मिल जायेंगे जिनसे इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतेन्दु युग में हिन्दी–साहित्य सेवियों की न सिर्फ विज्ञान–विषयक विवेचनाओं में रूचि थी बल्कि इन वैज्ञानिक विषयों पर अच्छी पकड़ भी थी, इतना ही नहीं इन विषयों को हिन्दी के पाठकों तक सरल और बोधगम्य भाषा में पहुँचाने की

---

[1] 'हिन्दी प्रदीप'–जुलाई 1880 ई. – 'प्रकाश' नामक लेख से.
[2] 'हिन्दी प्रदीप'–जून 1880 ई. – 'हमारी परिवर्तन विमुखता' नामक लेख से.
गस्त 1896 ई. – 'मनोयोग और युक्ति' नामक लेख से.

कटिबद्धता भी इन हिन्दी सेवियों में दिखाई देती है। इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि भट्ट जी, ज्ञान–विज्ञान के विषयों के कोरे प्रचार–प्रसार के समर्थक ना थे। इन विषयों की सार्थकता वे मानवता के विकास में मानते थे। आज जब विज्ञान के अनेक विनाशकारी स्वरूप, (युद्धास्त्रों, परमाणवीय, जैवीय रासायनिक और नाभिकीय हथियारों के विकास के सन्दर्भ में, ग्लोबल वार्मिंग के संदर्भ में, प्राकृतिक और जैविक असंतुलन के बारे में, अंधाधुंध औद्योगिकीकरण से खतरनाक स्तर तक बढ़ते प्रदूषण के संदर्भ में, जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में "टर्मिनेटर बीज" [इन बीजों से दुबारा फ़सल पैदा नहीं की जा सकती] आदि कई मानव और मानवता विरोधी संदर्भों में), सामने आ रहे हैं तब ऐसे में भट्ट जी की यह धारणा कितनी समीचीन है कि–

"कोई कैसा ही शास्त्र और विद्या क्यों न हो यदि मनुष्य जाति की उन्नति ***Progress of Humanity*** का साधन न हुआ तो उसे व्यर्थ ही कहना पड़ेगा।"[1]

भट्ट जी के एक लेख 'नई वस्तु की खोज' (हिन्दी–प्रदीप जून 1901 ई.) पढ़कर आश्चर्य होता है और गर्व भी कि उस समय ये हिन्दी सेवी कितनी सूझ–बूझ के साथ हिन्दी साहित्य सम्पदा को बढ़ा रहे थे। इस लेख में डार्विन के विकासवाद के संकेत तथा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था प्लाज़्मा–अवस्था या अतिवायव्य अवस्था सम्बन्धी जानकारी के संकेत मिलते हैं। जहाँ तक पदार्थ की चौथी अवस्था की बात है आम विद्यार्थियों को तो छोड़िये आज विज्ञान के विशेष विद्यार्थियों को भी यह बहुत कम ही मालूम है। लेख से उद्धृत वह अंश देखिये–

---

1 सत्यप्रकाश मिश्र सम्पादित 'बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन एन.बी.टी. 1996, "दर्शन और उनके सम्बन्ध" (हिन्दी प्रदीप, अगस्त 1886 ई.) नामक लेख से हिन्दी–प्रदीप, अगस्त 1886 ई.

"आज आदमी की पैदाइश की 'थ्योरी' निकली, कल चन्द्रलोक में किस प्रकार की बस्ती है या है ही नहीं; परसों सूर्य मंडल किस पदार्थ का बना है यह सोचा जाता है; अथवा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था दरअसल कोई वस्तु है या दार्शनिकों का खयाली पुलाव है x x x।" केवल सूचना के लिए बता दूँ कि पदार्थ की इस चौथी अवस्था की जानकारी आचार्य शुक्ल ने भी विश्व प्रपञ्च में पृ. 6 पर दी है, देखिये यह उद्धरण –

"कुछ लोग नई बातों के साथ पुरानी बातों का अविरोध सिद्ध करने के लिये भूतों को ठोस, द्रव, वायव्य और अतिवायव्य अवस्थाओं के सूचक मात्र कहने लगे हैं।"

भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य से जुड़े और विज्ञान लेखन में रूचि लेने वाले नामों में पं. प्रताप नारायण मिश्र, आयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"; रामदीन सिंह आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। हालाँकि इनके द्वारा लिखा गया वैज्ञानिक साहित्य बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सका है, फिर भी जितना उपलब्ध हो सका है उसकी सूचना आगे इसी अध्याय के अंत में एक सूची में दी जा रही है।

भारतेन्दु यग में विज्ञान विषय पर लिखे गये लेखों की संख्या देखकर एक सुखद आश्चर्य की अनुभूति होती है तथा साथ–साथ उन हिन्दी सेवियों पर गर्व भी हेाता है जिन्होंने जाने–अनजाने में हिन्दी की ज्ञान–सम्पदा को, अपने परिश्रम, लगन, और दूरदर्शिता से, निरन्तर बढ़ाने का प्रयास किया। पुस्तकों और लेखों की सूची यदि बनाई जाये तो मेरे इस लघु–शोध–प्रबन्ध का लगभग एक चौथाई से भी अधिक हिस्सा भारतेन्दु युग की विज्ञान विषयक पुस्तक–सूचियों से ही अट जायेगा। इसलिए मैंने परिशिष्ट में कुछ अति महत्वपूर्ण वैज्ञानिक रचनाओं की एक संक्षिप्त सूची इस आशय हेतु लगा दी है (देखें परिशिष्ट : 1)।

भारतेन्दु युग (1850 ई.–1900 ई.) में विज्ञान विषयों यथा–स्वास्थ्य विज्ञान, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा–शास्त्र आदि पर अधिक लिखा गया। किसी को भी आश्चर्य होना स्वाभाविक है जब वह 'विनोदबिहारी पाल' विरचित 'विसूचिका चिकित्सा'[1] (एक्यूपंक्चर, ***acupuncture***) का संदर्भ पायेगा क्योंकि यह ग्रन्थ 1840 ई. में ही चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस से छप चुका था। आज इस युग में हिन्दी में ऐसे विषयों पर बहुत कम पुस्तकें हैं।

इसके अतिरिक्त गणित पर पुस्तकों की भी एक लम्बी सूची इस युग (भारतेन्दु युग) के संदर्भ में बनाई गई है (देखें परिशिष्ट 1)। बता देना चाहूँगा कि चिकित्सा शास्त्र के बाद जिस विषय पर सर्वाधिक पुस्तकें मिलती हैं, वह है गणित। यहाँ अभी तत्काल इस प्रसंग में मैं 'बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना' से प्रकाशित 'आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका'–डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह के हवाले से गणित और विज्ञान (मौलिक और अनूदित) विषय पर पुस्तकों की एक संक्षिप्त सूची प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह सूची अमुक पुस्तक के पृष्ठ 310 तथा 316 और 317 से उद्धृत है–

---

[1] आर्य भाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) के सूचीपत्र के प्रथम खंड से उद्धृत : पृष्ठ 272.

गणित पर पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	गुरु गणित शतक : प्रथम भाग (ब्राञ्च बोधोदय प्रेस से मुद्रित)	साहब प्रसाद सिंह	1879 ई.
2.	क्षेत्र तत्व	रामदीन सिंह	1881 ई.
3.	गुरु गणित शतक : दूसरा भाग	साहब प्रसाद सिंह	1882 ई.
4.	गणित बत्तीसी		
	पहला भाग	”	1884 ई
	दूसरा भाग	”	”
	तीसरा भाग	”	1886 ई
	चौथा भाग	”	1885 ई
5.	गणित कौमुदी	लक्ष्मीशंकर मिश्र 'नागर'	1884 ई
6.	गणित सार		
	पहला भाग	कालिका प्रसाद सिंह	1886 ई
	दूसरा भाग	”	1886 ई
7.	देशी हिसाब		
	पहला भाग	उमानाथ मिश्र	1889 ई
	दूसरा भाग	”	1889 ई

	तीसरा भाग चौथा भाग	” ” ”	1888 ई. 1889 ई.
8.	क्षेत्रनाप विद्या पहला भाग	उमानाथ मिश्र	1889 ई.
9.	रेखागणित पाँचवा	रामगूदर सहाय	1895 ई.
10.	अंकगणित प्रथम भाग	अयोध्यासिंह उपाध्याय	1896 ई.

विज्ञान पर मौलिक पुस्तकें

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	विषय	प्रकाशन वर्ष
1.	नियुद्ध शिक्षा प्रथम भाग	दामोदर गुरु (अच्युतानन्द स्वामी)	स्वास्थ्य विज्ञान	1882 ई.
2.	” दूसरा भाग	”	”	”
3.	स्वास्थ्य विद्या	प्रतापनारायण मिश्र	”	1898 ई.

विज्ञान पर अनूदित पुस्तकें

क्र. सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	विषय	प्रकाशन वर्ष
1.	मातृशिक्षा प्रथम भाग	गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय अनुवादकः सरयू प्रसाद मिश्र	स्वास्थ्य विद्या	1885 ई.
2.	मातृशिक्षा दूसरा भाग	”	”	”
3.	शरीर पालन	यदुनाथ मुखर्जी अनुवादकः सियावर रघुवर शरण भगवान प्रसाद	”	”
4.	स्वास्थ्य रक्षा सचित्र	राय राधिका प्रसन्न मुखर्जी अनुवादक : रामदीन सिंह	”	1893 ई.
5.	सरल स्वास्थ्य रक्षा	राय राधिका प्रसन्न मुखर्जी अनुवादक : नन्द मिश्र	”	1896 ई. 1897 ई.

अध्याय दो

हिंदी में विज्ञान सम्बन्धी चिन्तन द्विवेदी युग (1901 ई.–1920 ई.)

हिन्दी माध्यम में विज्ञान लेखन को स्थूलतः दो प्रमुख भागों में बाँटा जाता है:– स्वतन्त्रता पूर्व विज्ञान लेखन तथा स्वतन्त्र भारत में विज्ञान लेखन। इस वर्गीकरण की त्रासदी यह है कि यह हिन्दी माध्यम में विज्ञान लेखन को लेकर समय की विभाजक रेखा से कहीं अधिक गहरी उन मूल्यों की विभाजक रेखायें खींचता है जिनके कारण आज हम 'हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विज्ञान लेखन' और 'हिन्दी भाषा में विज्ञान साहित्य' में न सिर्फ़ विधिवत् अन्तर समझते हैं बल्कि प्रयासपूर्वक इस अन्तर को बनाये रखने का उद्यम करते हैं। आज किसी भी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका में विज्ञान के लिये नियमित रूप से कोई स्थान नहीं दिया जाता है। विज्ञान समूचे के लिये तो छोड़ दीजिये, स्वयं हिन्दी में विज्ञान पर क्या लिखा जा रहा है इसकी सूचना तक नहीं छपती। पता नहीं यह उस भाषा का दुर्भाग्य है जिसके लाखों पाठक और करोड़ों समझने–बोलने वाले लोग बढ़ते विज्ञान के इस युग में इसकी आवश्यकता नहीं समझते या फिर स्वयं विज्ञान का, जो तमाम तरह की वैज्ञानिकता और अवैज्ञानिकता पर दिन–रात बहस करने वाले हिन्दी साहित्य सेवियों के स्तर की वैज्ञानिकता की कसौटी पर स्वयं को खरा नहीं उतार पाया और आज परिदृश्य यह है कि सौ में से निन्यानबे, हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी, शिक्षक और चिन्तक यह कहते हुये मिल जायेंगे कि हिन्दी में कहाँ–कुछ विज्ञान पर लिखा गया है ?, हिन्दी भाषा में वह सामर्थ्य ही नहीं कि विज्ञान के वैचारिक बोझ को उठा सके। अंग्रेजी के पाठक जब ऐसा कह रहे होते हैं तब स्पष्ट रूप से इसके निहितार्थ समझे जा सकते हैं लेकिन हमारे हिन्दी–सेवी जब ऐसा कहते पाये जाते हैं तब निश्चित रूप से उनकी विज्ञान के प्रति उदासीनता, विज्ञान के प्रति 'अयं निजः परो वेति' की धारणा और फिर इन सबसे उपजी वह लाचारी जो इन्हें विज्ञान की सामान्य समझ से दूर रखती है, स्पष्ट रूप से रेखांकित होती है।

आज़ादी की लड़ाई में कहना न होगा, हिन्दी प्रदेश ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। बढ़–चढ़कर भाग क्या– बल्कि कहना यह होगा कि लड़ाई की कमान इसी प्रदेश की जनता के हाथ में रही। हिन्दी भाषा के उन्नायकों में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से लेकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बाद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक सभी ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' वाली बात को गाँठ बाँध ली और पूरी कटिबद्धता के साथ जुट गये हिन्दी साहित्य के भण्डार निर्माण में। साम्राज्यवाद को इन प्रबुद्ध जनों ने अपने स्तर से अपनी भाषा की सेवा करके एक झटका देने की कोशिश की। इस प्रयास में अनायास ही और सायास भी जो भी विषय जहाँ से मिलते गये उन सबको हिन्दी साहित्य में समेटते चले गये, ये विद्वान। परिणाम यह हुआ कि वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र, आयुर्वेद, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान, खगोल शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, तर्क शास्त्र, आचार शास्त्र, ज्योतिष, फलित ज्योतिष आदि नाना विषयों पर हिन्दी में लेख लिखे–लिखवाये गये। इतना ही नहीं विशेषकर बाल साहित्य पर यदि दृष्टि डालें तो प्रचुर मात्रा में बाल–विज्ञान–साहित्य की भी रचना हुई, उन दिनों। इन सबकी विधिवत् एक सूची, सन्दर्भ–सुविधा के लिये परिशिष्ट : 4 में उद्धृत की जा रही है। इन गम्भीर विषयों के अतिरिक्त छपाई, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, जादूगरी, टाइपराइटिंग आदि पर भी तमाम पुस्तकें आईं। द्विवेदी युगीन वैज्ञानिक साहित्य और उससे मिलते–जुलते विषय पर पुस्तकों की विस्तृत जानकारी के लिए परिशिष्ट : 3 तथा परिशिष्ट : 4 देखे जा सकते हैं। नमूने के लिए यहाँ तत्काल अभी भौतिक विज्ञान पर पुस्तकों की एक सूची दे रहा हूँ।

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वंशीधर अनुवादक : मोहनलाल पण्डित	सिद्ध पदार्थ विज्ञान	सरकारी पुस्तकालय, आगरा	1853 ई.
2.	गोबर्धन जी	भौतिकी	सद्धर्म प्रचारक प्रेस, गुरुकुल काँगड़ी	1967 वि. या 1910 ई.
3.	लक्ष्मीचन्द	विद्युत शास्त्र	विज्ञान हुनरमाला ऑफिस, बनारस	1922 ई.
4.	लक्ष्मीशंकर मिश्र	वायुचक्र विज्ञान भाग एक भाग दो	ग्रन्थकार, बनारस कॉलेज "	1874 ई. "
5.	सम्पूर्णानन्द	भौतिक विज्ञान	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	1916 ई.
6.	राजाराम सिंह	वायु विज्ञान	राज्य सीतामऊ, मालवा	1908 ई.
7.	भीष्मचन्द्र शर्मा	बिजली की बैटरियाँ	बी.सी. शर्मन एण्ड कम्पनी, लखनऊ	1933 ई.
8.	विनायक राव	संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान	चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस	1884 ई.

भौतिक विज्ञान पर यह सूची अभी अधूरी है। पूरी सूची को शोध प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट 4 दिया जा रहा है। इसी प्रकार नमूने के लिये अन्य विषयों यथा आचार शास्त्र (ब्रहमचर्य), कामशास्त्र, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, भूगर्भाशास्त्र आदि पर भी सूचियाँ परिशिष्ट–4 में प्रस्तुत की जा रही हैं। इन सभी सूचियों का संदर्भ–स्रोत आर्यभाषा–पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) के सूचीपत्र का प्रथम खण्ड है। इस सूची पत्र का प्रकाशन वर्ष सम्वत् 2001 विक्रमी अथवा 1944 ई. है।

आगे बढ़ने से पहले मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा परिशिष्ट : 4 में कि दी गई सूचियों में विषय और प्रकाशन वर्ष हो सकता है मेरे शोध प्रबन्ध के विषय और कालपरिधि के भीतर ठीक–ठीक ना आ रहे हों, अभी तत्काल यहाँ मेरा यह उद्देश्य भी नहीं है। अभी मैं समग्र रूप से आजादी से पहले के हिन्दी साहित्य के भण्डार–निर्माण की बात ही कर रहा हूँ। वैसे भी ये सूचियाँ जिस स्रोत से ली गई हैं उसका प्रकाशन वर्ष 1944 ई. है, इसलिये यहाँ उद्धृत सभी रचनायें स्पष्ट है 1944 ई. या इससे पहले की ही होंगी। इसी क्रम में मैं दो बातें और कहना चाहूँगा। पहली बात तो यह– कि चूँकि तत्काल अभी वही चित्र खींचने का प्रयास किया जा रहा है जिससे यह भान हो सके कि किस प्रकार अंग्रेजी साहित्य और भाषा के बरक्स साम्राज्यवाद के विरोध में 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' वाली बात को चरितार्थ करने के प्रयास में हमारे भाषा उन्नायक (वे सभी लोग जिन्होंने प्रारम्भिक दौर का हिन्दी लेखन, साहित्य सेवा और एक प्रकार से हिन्दी भाषा की उन्नति में सक्रिय सहयोग दिया) लगे रहे और हिन्दी साहित्य का भण्डार निर्माण करते रहे। इसलिये यहाँ पर केवल विज्ञान विषयक पुस्तकों की चर्चा करना कुछ असंगत सा प्रतीत हो रहा है अतः विज्ञान के अतिरिक्त व्याकरण, संगीत, खेती बारी बही खाता, व्यापार, गृहस्थी की व्यवस्था आदि विषयों पर भी संक्षिप्त सूची परिशिष्ट : 4 में प्रस्तुत की जा रही है।

दूसरी बात यह कि एक प्रकार से यदि देखा जाये तो द्विवेदी युग आज़ादी के पहले का ही वह महत्वपूर्ण समय है कि जब हिन्दी के परिमार्जन, परिष्करण, निर्माण, मानकीकरण आदि का जी तोड़ प्रयास किया जा रहा था। कुल मिलाकर हिन्दी भाषा को ठीक–ठाक करके उसकी संरचना का पुननिर्माण किया जा रहा था और उसी क्रम में उस युग का विज्ञान–लेखन भी एक प्रकार से साहित्य–भण्डार निर्माण का एक अंग था। किन्तु फिर भी चूंकि शोध–प्रबन्ध का विषय द्विवेदी युग में हिन्दी में विज्ञान–लेखन पर केन्द्रित है इसलिये द्विवेदी युग में जो पुस्तकें पत्र–पत्रिकाएं लेख आदि इस विषय से सम्बन्ध रखते हैं आगे इस अध्याय में उन पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

आज़ादी के बाद हिन्दी सेवियों विशेषकर हिन्दी साहित्य से जुड़े लोगों ने साहित्य के रूप में लोकप्रिय विज्ञान–लेखन से स्वयं को अलग करने लग गये और यह अचानक नहीं हुआ। द्विवेदी युग के अंतिम चरणों में हुआ यह कि हिन्दी साहित्य के स्तर से लोकप्रियकरण का कार्य बहुत सीमा तक हो चुका था। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि अब स्वतन्त्र रूप से विज्ञान विशेष पर संकेन्द्रित पत्रिकाएं, संस्थायें, पाठ्य पुस्तकें प्रकाश में आने लगीं। उदाहरण के लिये 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका का पहला अंक 1 अप्रैल 1915 को छपकर पाठकों में हाथों में आया। मज़ेदार और उत्साहवर्द्धक बात यह थी कि इसका संपादन पंडित श्रीधर पाठक ने किया था। एक साहित्यकार द्वारा पूरी तरह से विज्ञान विषय पर केंन्द्रित पत्रिका का निश्चित ही स्वागत योग्य था। यह कदम यदि आज उठाया जाये तो और भी सराहनीय होगा क्योंकि बढ़ते विज्ञान के इस युग में हिन्दी के पाठकों तक इससे सूचनायें पहुँचेगीं, खासकर साहित्य के विद्यार्थियों तक, और वे लाभान्वित होंगे।

श्रीधर पाठक के संपादकत्व में जो 'विज्ञान' का पहला अंक निकला वह द्विवेदी युग में एक अत्यन्त ही उत्साहवर्धक घटना थी। यह पहला अंक प्रकाशित हुआ था – लाला कर्मचन्द्र भल्ला, विज्ञान कार्यालय, प्रयाग से।

इस अंक के लेखों की सूची इस प्रकार है–

विषय–सूची *

विषय	लेखक	पृष्ठ सं
1. विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता	रा.गौ.	2
2. विज्ञान का विस्तार	पं. रघुनाथ चिंतामणि चतुर्वेदी	7
3. कोयले की आत्मकहानी	अध्यापक गोपाल स्वरूप भार्गव	10
4. डांडी के अद्‌भुत खेल और उसका सिद्धांत	अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	13
5. बिजली के ज्ञान का विकास और उन्नति का इतिहास	अध्यापक प्रेमबल्लभ जोशी	19
6. खेती का प्राण और उसकी रक्षा	संकर्षण	23
7. गेहूँ की बीमारी और उसका इलाज	अध्यापक दक्षिण रंजन भट्‌टाचार्या	25
8. नहर की सिंचाई	विश्वकर्मा	26
9. शिल्प की लीला	लाला पार्वती नन्दन	34
10. दाग धब्बे छुड़ाना	श्रीयुत् मोहन लाल जौहरी	36
11. जल के अनेक रूप	अध्यापक गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	39
12. पनडुब्बी नाव	अध्यापक महावीर प्रसाद श्रीवास्तव	43
13. वैज्ञानिकी		44

* इस अंक के मुखपत्र पर छपी विषय सूची से उद्‌धृत। इसके लिये द्वितीयक स्रोत के रूप में विज्ञान प्रसार, सी–24, कुतुब इंस्टीट्‌यूशनल एरिया, नई दिल्ली–16 द्वारा प्रकाशित तथा डॉ. शिव गोपाल मिश्र द्वारा संपादित पुस्तक 'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष–प्रथम खण्ड' के प्रथम संस्करण 2001 का उपयोग किया गया है। पुस्तक में पृष्ठ 201 से ठीक पहले यह मुखपत्र छपा है।

इसके अतिरिक्त आयुर्विज्ञान पर एक स्वतन्त्र मासिक पत्रिका आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, भी प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थी। यह पत्रिका अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली से पहली बार 1913 ई. में प्रकाशित हुई। इसके सम्पादक राजवैद्य किशोरी दत्त शास्त्री थे। एक स्रोत* के अनुसार यह हिन्दी में पहली आयुर्विज्ञान पत्रिका है।

* डॉ. मनोज कुमार पटैरिया – 'हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता', तक्षशिला प्रकाशन, सन् 2000 का परिशिष्ट : 1

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग (1900–1920) में ही हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर सुधीजनों का ध्यान हिन्दी में विज्ञान लेखन की ओर जाने लगाा और नये–नये प्रयास सामने आने लगे।

द्विवेदी युग का इस सन्दर्भ में महत्व इस बात को लेकर है कि इस युग में आचार्य द्विवेदी की देख–रेख में हिन्दी में विज्ञान लेखन की एक ठोस और विधिवत् शुरूआत हुई। इस सन्दर्भ में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका केन्द्रीय महत्व की है। 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'सम्मेलन–पत्रिका' 'मर्यादा' आदि पत्रिकायें भी हिन्दी माध्यम से विज्ञान का लोकप्रियकरण करती रहीं।

1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में जब सरस्वती निकलना शुरू हुई तब विज्ञान तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों से जुड़े लोग सरस्वती में अपनी सेवायें देने लगे। साहित्य से जुड़े व्यक्तियों में पं0 चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा डॉ0 सम्पूर्णानन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों साहित्यकारों ने विज्ञान पर खूब लिखा। 'सरस्वती' में, 'गुलेरी' जी का पहला लेख 'आँख' शीर्षक से फरवरी–मार्च, 1905 ई. के अंक में प्रकाशित है। यह निबन्ध आगे भी छः अंकों में प्रकाशित होता रहा है। इसमें गुलेरी जी ने उत्तल

और अवतल लेंस के सैद्धान्तिक पक्ष की सचित्र व्याख्या भी प्रस्तुत की है। लेंसों के लिए इन्होंने कहीं–कहीं 'ताल' शब्द का प्रयोग किया है। शब्दावली की समस्या, जाहिर है, उस समय रही ही होगी। विज्ञान के किस अंग्रेजी पद का कौन सा हिन्दी प्रतिस्थाप्य होगा यह भी इन्हीं सुधीजनों को खोजना था, बल्कि नये शब्दकोश का निर्माण करना था। इसी समस्या की गुरूता को देखकर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने एक वैज्ञानिक शब्दकोश का निर्माण करवाया। यह शब्दकोश पहले अलग–अलग विषयों पर छपा था बाद में सब मिलाकर एक संयुक्त कोश 1906 ई. में छपकर आया। सन् 1901 ई. में श्याम सुन्दर दास द्वारा तैयार किया गया शब्दकोष भी इसी 'वैज्ञानिक शब्दकोश' में शामिल है।

गुलेरी जी समेत अन्य कई लेखक ''सरस्वती'' के अतिरिक्त विज्ञान पर अन्य बहुत सी पत्रिकाओं में भी लिखते रहे। कई स्फुट सन्दर्भ शोध के दौरान मिलते तो हैं किन्तु प्रारंभिक स्रोत तक पहुँच के आभाव में मैं उन सबका अभी तत्काल यहाँ जिक्र नहीं कर रहा हूँ।

गुलेरी जी के अतिरिक्त जैसा कि पहले भी कहा गया है डॉ0 संपूर्णानंद भी हिन्दी साहित्य से जुड़े ऐसे व्यक्ति रहे जो विज्ञान–लेखन में मृत्यु पर्यन्त, 1969ई. तक बराबर रूचि लेते रहे। ज्योर्तिविनोद नाम से इनकी एक पुस्तक 1917 ई. में छपकर आई। यह पुस्तक लक्ष्मी नारायण प्रेस काशी से छपी थी। ढाई सौ पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य इस समय केवल एक रूपये था। यह पुस्तक सामान्य पाठकों को लक्ष्य करके खगोल शास्त्र पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कदाचित् हिन्दी में खगोल विद्या पर यह पहली पुस्तक है। इसमें पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, सौर–चक्र, उल्का तारामण्डल, आकाश–गंगा आदि पर महत्त्वपूर्ण और रोचक जानकारी दी गई है। यह पुस्तक नेशनल लाइब्रेरी, बेलवेडियर कोलकाता में सुरक्षित है।

यह बात देखने में आई है कि अधिकांश विज्ञान लेखक किसी न किसी रूप में विज्ञान से जुड़े रहे। यदि सीधे–साधे विज्ञान से नहीं तो वैज्ञानिक

अभिरूचियों वाले विषयों यथा गणित, भूगोल आदि से जुड़े रहे। हालाँकि लेखकों का परिचय ठीक–ठीक दिया नहीं गया है (सरस्वती में) लेकिन नाम देखकर और विषय का विश्लेषण देखकर इतना तो कहा जा सकता है कि अमुक लेखक निश्चित रूप से हिन्दी साहित्य का नहीं है। और सम्भवतः हिन्दी साहित्य के भण्डार निर्माण के लिए यह एक अच्छी बात भी थी, क्योंकि इससे विषय के विवेचन और विकास में विविधता सुनिश्चित हुई।

बहुत से लेख ऐसे देखने को मिले हैं जो वैज्ञानिकों के महत्त्वपूर्ण प्रयोगों, उनकी जीवनियों आदि से संबद्ध है अथवा गणित आदि वैज्ञानिक विषयों के महत्त्वपूर्ण आचार्यों, शिक्षकों की जीवनियों से प्रेरित है। ऐसे लेखों में सीधे–सीधे विज्ञान–चर्चा तो नहीं है लेकिन परोक्ष रूप से विज्ञान के किसी न किसी पहलू पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। ऐसे लेखों में, विषय की दृष्टि से, महत्वपूर्ण लेख इस प्रकार हैं –

लेख का नाम	लेखक का नाम	पत्रिका / प्रकाशन
1. राय बहादुर पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र	राम नारायण सिंह	जून1907, सरस्वती
2. चार्ल्स डार्विन	श्याम सुन्दर जोशी	मार्च 1917, सरस्वती
3. भुनगा पुराण	रामदास गौड़	जून 1916 विज्ञान
4. लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत	गंगा प्रसाद वाजपेयी	जून 1916 विज्ञान
5. अध्यापक बसु के अद्भुत अविष्कार	–	फर.–मार्च. 1903, सरस्वती
6. महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री, आई0 ई0	पं0 गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	सित0 1903. सरस्वती
7. बाराहमिहिर	पं0 गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	अप्रैल 1904 सरस्वती
8. नेपल्स की कासानोवा नामक औद्योगिक शाला	माधव राव सप्रे	दिस. 1904, सरस्वती

9. सवाई जयसिंह	–	मई 1905, सरस्वती
10. श्रीयुत भोलादत्त पांडे	सत्यदेव	अक्टू. 1910 सरस्वती
11. मारकोनी का महात्म्य	जगन्नाथ खन्ना	फर0 1912 सरस्वती
12. सर आइजक न्यूटन	सरयू नारायण त्रिपाठी	फर0 1913 सरस्वती
13. भास्कराचार्य	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	अग0 1913 सरस्वती
14. भास्कराचार्य और लीलावती	अम्बिका प्रसाद पांडेय	अप्रैल 1915 सरस्वती
15. बेंजामिन फ्रैंकलिन	सिंह–वर्मा	अग0 1916 सरस्वती
16. श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना	सेठनिहाल सिंह	मार्च 1917, सरस्वती
17. विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान मंदिर	–	जन0 1918 सरस्वती
18. लुई पास्टुर	सम्पादक	दिस0 1920 सरस्वती
19. हेनरी फेवट	वनमाली प्रसाद शुक्ल	नव0 1920 सरस्वती
20.प्रो0 त्रिभुवनदास गज्जर	रामदहिन मिश्र	अग0 1920 सरस्वती

अब मैं यहाँ एक सर्वेक्षण की चर्चा करना चाहूँगा जो राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली ***(N.C.S.T.C)*** ने विज्ञान परिषद् के माध्यम से 1998 ई. में करवाया। इस सर्वेक्षण में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषय पर केन्द्रित कुल 2000 से अधिक पुस्तकों को सम्मिलित किया गया है, ये सभी पुस्तकें हिन्दी माध्यम में विज्ञान के लोकप्रियकरण हेतु लिखी गई है। इन पुस्तकों में अधिकांश पुस्तके ऐसी है तो 1920 ई. के बाद की है, इन्हें यहाँ शामिल नहीं किया जा रहा है, केवल 1920 ई. तक की पुस्तकों की एक विस्तृत सूची परिशिष्ट : 3 में दी जा रही है।

'सरस्वती', द्विवेदी युग की प्रतिनिधि पत्रिका है। बाबू श्याम सुंदर दास के संपादकत्व में 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अंको से ही वैज्ञानिक रूझानों वाले लेख छपते रहे हैं। नमूने के तौर पर फरवरी–1900 ई. की सरस्वती में ''जन्तुओं की सृष्टि'' पर एक लेख प्रकाशित हुआ। जन्तुओं की सृष्टि कैसे हुई? डार्विन के

विकासवाद आदि की चर्चा इस लेख में की गई है। विकासवाद पर 'सरस्वती' में आगे भी कई लेख लिखे गये। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अगस्त 1906 ई. की सरस्वती में "विकास–सिद्धांत" नाम से एक लिखा। इस लेख के अंत में द्विवेदी जी द्वारा किये गये वायदे के अनुसार इस विषय पर लेख आमंत्रित किये जाने लगे। जनवरी 1910 ई. की सरस्वती में 'मानव रहस्य' नाम से एक लेख जन्तुओं के विकास क्रम पर प्रकाशित हुआ। इस लेख के लेखक महेन्दु लाल गर्ग जी थे। चूँकि ये द्विवेदी युग के महत्त्वपूर्ण विज्ञान लेखक रहे हैं इस कारण इनके लेखों के नमूने और उस पर संक्षिप्त टिप्पणी अध्याय 4 में देखी जा सकती है। मार्च 1910 ई. में पुनः इस विषय पर लेख छपा मिलता है। कहना चाहूँगा कि विकासवाद पर सरस्वती में अन्त तक सामग्री छपती रही है। मई 1914 ई. के अंक में "स्तनपायी पशुओं में मनुष्य की श्रेष्ठता" शीर्षक से लेख लिखकर रामनारायण शर्मा ने डार्विन के विकासवाद का समर्थन किया। पुनः मई 1915 ई. में द्वारिका नाथ मिश्र ने "क्रम–विकास" नाम से एक लंबा लेख लिखा है। इस लेख में डार्विन के विकासवाद से जुड़ी परवर्ती वैज्ञानिक मान्यताओं पर लेखक ने कुछ प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं विकासवाद पर हिन्दी वालों की लेखनी, भाषा और विचार दोनों ही स्तरों पर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के "विश्व–प्रपञ्च" पर जाकर अपने चरम को प्राप्त करती है। 1920 ई. में आचार्य शुक्ल ने "विश्व– प्रपञ्च" नाम से जर्मन प्राणितत्ववेत्ता ई0 एच0 हैकेल की पुस्तक "डी वेल्टरैथ–सेल" के अंग्रेजी अनुवाद "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" का हिन्दी अनुवाद किया है, विश्व प्रपञ्च की लगभग चौरानबे पृष्ठीय लंबी और सूचनापरक तथा विचारोत्तेजक भूमिका इसका प्रमुख आकर्षण है। इस भूमिका को पढ़कर आचार्य शुक्ल की विज्ञानवादी दृष्टि को समझने में और सहायता मिलती है। सन् 1920 ई0 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से छपकर यह 'विश्व प्रपञ्च' पहले दो खण्डों में (भूमिका + अनुवाद) हिन्दी पाठकों के सम्मुख आया फिर बाद में 1962 ई. में इसका संयुक्त संस्करण भी, नागरी प्रचारिणी, सभा

काशी से ही छपकर आया। मैंने आगे अध्याय 3 में विश्व प्रपञ्च की विस्तार से चर्चा की है। सभी उद्धरणों के संदर्भ भी इसी 1962 वाले संस्करण से लिए गए हैं।

विकासवाद के साथ–साथ 'सरस्वती' में विज्ञान के कई सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों पर भी लगातार लेख छापे जाते रहें हैं। इन सभी लेखों की एक विस्तृत सूची परिशिष्ट : 2 में देखी जा सकती है। विज्ञान विषय में पाठकों की रूचि और बढाने तथा उसे बनाये रखने के उददेश्य से कभी–कभी वैज्ञानिकों की सचित्र जीवनियाँ भी 'सरस्वती' में छापी जाती रहीं हैं। नमूने के तौर पर अप्रैल 1903 की सरस्वती में यूरोप के तीन वैज्ञानिकों–कोपरनिकस (1472), गैलीलियों (1564) तथा न्यूटन (1642) का फोटो सहित जीवन परिचय तथा उनके अविष्कारों का सामान्य विवरण प्रकाशित हुआ है। सरयू नारायण त्रिपाठी ने आगे चलकर फरवरी 1913 के अंक में न्यूटन का एक विस्तृत जीवन–परिचय लिखा जिसमें उसके अविष्कारों की भी चर्चा की गई है। न्यूटन का गुरूत्त्वाकर्षण सिद्धांत बहुत काम का सिद्धांत है। इस लेख में इस पर भी ठीक–ठाक चर्चा की गई है। गुरूत्त्वाकर्षण शक्ति पर एक लेख का नमूना और उसकी भाषा तथा कथ्य पर टिप्पणी अध्याय 4 में देखी जा सकती है।

यूरोपीय वैज्ञानिकों के साथ–साथ सरस्वती ने उन भारतीय वैज्ञानिकों का भी सम्मान किया है, जिनके कारण पराधीन भारत का सम्मान संसार भर में हुआ। फरवरी–मार्च 1903 की सरस्वती में महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस (बसु) के अविष्कारों की जानकारी से संबधित एक लेख छपा। लेख साफ़ तौर पर दो हिस्सों में बँटा दिखाई देता है। पहला हिस्सा वैज्ञानिक का जीवन परिचय के रूप में है जबकि दूसरा हिस्सा उनके अविष्कारों पर केन्द्रित है। मैं केवल सूचना के लिए यहाँ बताना चाहता हूँ कि अध्यापक जगदीश चन्द्र बोस वे पहले भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होनें वनस्पति–जगत में नवीन खोजों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि पेड़–पौधों में भी चेतना के तत्व पाये जाते हैं।

भारतीयों की चेतना को विज्ञान क्षेत्र से पश्चिम की चेतना 'हाइजैक' न कर ले जाएं इसके लिए उन्होनें विज्ञान के पठन–पाठन का सिलसिला अपनी मातृभाषा में शुरू करने के लिए कुछ ठोस प्रयास भी किये। उन्होंनें अपने अधिकांश यन्त्रों का नाम अंग्रेजी में न रखकर अपनी भाषा में रखना उचित समझा। "कंचन–ग्राफ" और "शोषण–ग्राफ" नाम वैज्ञानिक बसु के ही दिए हुए हैं।

देखकर यह, एक सुखद आश्चर्य होता है कि, हिन्दी नवजागरण युग के साहित्य–सेवी इतने महत्त्वाकांक्षी और दूरदर्शी थे कि उस जमाने में जबकि 'प्लाज़्मा' (पद्धार्थ की अतिवायव्य अवस्था, चौथी अवस्था) पर अंग्रेजी में बहुत कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता, इन महारथियों ने इस विषय को हिन्दी पाठकों के संज्ञान में लाने का प्रयास किया। यथास्थान पहले अध्याय में भारतेन्दु मण्डल के बालकृष्ण भट्ट तथा आगे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'विश्व प्रपञ्च' के संदर्भ में इसकी चर्चा की गई है। सोचिये ज़रा– कहाँ आज से सौ–सवा सौ साल पहले हिन्दी के चहेते इन बातों से इस कदर वाकिफ थे, कहाँ आज इस घोर वैज्ञानिक युग में हम हिन्दी वाले ऐसी बातें सुनकर ही घोर आश्चर्य से मुँह खोल देते हैं। इस किस्म की है विज्ञान के प्रति हम हिन्दी वालों अनभिज्ञता और उदासीनता!

सरस्वती में ऐसे बहुत से लेख मिल जाएंगे जिनके लेखकों का नाम तक नहीं छपा है। स्वविवेक से उन वैज्ञानिक लेखों को संपादक–प्रणीत मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नमूने के तौर पर अभी ऊपर फरवरी–मार्च 1903 की सरस्वती में अध्यापक बसु से संबधित जिस लेख की चर्चा की गई वह भी ऐसा ही लेख है। परिशिष्ट–2 में सरस्वती में छपे वैज्ञानिक लेखों की सूची दी गई है। वहाँ भी जिन लेखकों के नाम नहीं दिये गये उन्हें भी इसी प्रकार के 'संपादक–प्रणीत' ही माना जाना चाहिए।

संपादक महोदय द्विवेदी जी की, यह मानिये कि सरस्वती में छपने वाली सभी सामग्रियों के चयन को लेकर लगभग एकाधिकार की स्थिति थी और चूँकि

द्विवेदी जी एक सचेत और गंभीर साहित्यकार होने के साथ–साथ भाषा के गंभीर पारखी भी थे इसलिए सरस्वती में छपे वैज्ञानिक लेख अनगढ़पन की त्रुटि से लगभग मुक्त हैं। 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के जिस 'ज्ञानकाण्ड' का निर्माण किया वह निश्चय ही अतुलनीय है, किन्तु खेद है कि उनके इस प्रयास को विशेषकर हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक रूझान वाले विषयों को शामिल करने का स्तुत्य कार्य हिन्दी वाले आगे न बढा सके।

द्विवेदी जी ज्ञान की विकासशील परंपरा में विश्वास करते थे। फरवरी 1901 ई. की सरस्वती में द्विवेदी जी ने अपनी इस धारणा को विज्ञान की विकासशीलता के सहारे 'ज्ञान' शीर्षक से लिखे गये लेख में पाठकों को कैसे समझाया है, जरा देखिए –

"जितने विज्ञान विषय हैं उनके भ्रम का संशोधन उन विषयों में पारदर्शी होकर नूतन शोध द्वारा विद्वद्जन कर सकते हैं। यह कोई आश्यर्च की बात नहीं। इस समय प्रोफेसर बोस ने "लडिल्लहरी" नामक विज्ञान को सिद्ध करके उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है। कालान्तर में उसका सिद्धांत अन्य विद्वानों द्वारा अन्यथा प्रमाणित हो जाएगा, तो हमको उस पर अविश्वास करने में अनौचित्य नहीं। माध्याकर्षण विषयक न्यूटन का मत सभी विद्वद्जन मान्य करते हैं, परन्तु प्रकाश विषयक उसके मत को न मानकर फ्रेनेल का सिद्धांत ही शिरोधार्य करते हैं।"

द्विवेदी जी द्वारा हिन्दी के 'ज्ञानकाण्ड' के विकास के कई सोपान हैं। 'सरस्वती' उनमें से एक है। 'सरस्वती' में विज्ञान–विषयक अपने विचारों को व्यक्त करने के अतिरिक्त महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रचुर मात्रा में अन्यत्र भी विज्ञान–विषयक लेख, वैज्ञानिकों की जीवनियाँ आदि लिखी हैं। यह सब कुछ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली के खण्ड तीन, चार, पाँच, छः और सात से

प्राप्त किया जा सकता है। मैं यहाँ इस आशय से संबधित सूचना मात्र देने के लिए संक्षिप्त विवरण दे रहा हूँ–

महावीर प्रसाद–रचनावली (संकलन–संपादन; भारतयायावर), किताब घर नई दिल्ली, से प्रकाशित ग्रन्थ में विज्ञान विषयक लेखों को विवरण –

खण्ड तीन में – तीसरे भाग के अंतर्गत; प्राचीन भारत में शस्त्र चिकित्सा (सर्जरी), प्राचीन भारत में जहाज, भारतवर्ष का नौका–नयन आदि विषयों पर लेख हैं।

खण्ड चार में – भाग तीन के अंतर्गत ; सबसे बड़ा हीरा, भाग चार में ; कोपर्निकस, गैलीलियो और न्यूटन, हर्बर्ट स्पेंसर; बेंजामिन फ्रेंकलिन, लुई पास्टुर आदि की जीवनियाँ हैं। भाग पाँच में ; दक्षिणी ध्रुव की यात्रा–1, दक्षिणी ध्रुव की यात्रा–2, उत्तरी ध्रुव की यात्रा–1, उत्तरी ध्रुव की यात्रा–2, विस्यूवियस का विषम स्फोट–1, विस्यूवियस का विषम स्फोट–2, पाताल–प्रविष्ट पांपियाई नगर, ढाई हज़ार वर्ष की पुरानी कबरें, तीस लाख वर्ष के पुराने जानवरों की ठठरियाँ। भाग छः में ; पूर्वी अफ्रीका की कुछ जंगली जातियाँ, लंबे होंठ वाले जंगली आदमी, अफ्रीका के खर्वाकार जंगली मनुष्य, जुलूलैण्ड (अफ्रीका) की असभ्य जूली जाति आदि।

खण्ड पाँच में कुछेक भारतीय चिन्तकों, विचारकों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों का जीवन–चरित्र।

खण्ड छः में 'सम्पत्तिशास्त्र' तथा 'औद्योगिकी' दोनों पुस्तकों का मूल पाठ।

खण्ड सात में रजोदर्शन, गर्भसंचार, गर्भ के आकार और परिमाण प्रसूति, आत्मा, पुनर्जन्म, जीवन क्या वस्तु है ? ज्ञान, सृष्टि विचार, माइसोर में सोने ही खानें, भारतवर्ष में हीरे की खानें, जलचिकित्सा, न्यूटन और जलती हुई अँगीठी, गर्मी और सर्दी में भेद आदि।

यह सब देखकर तथा सरस्वती में बिखरे वैज्ञानिक लेखों को देखकर मानना पड़ेगा कि, "द्विवेदी जी ने एक निश्चित मत और निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हिन्दी के ज्ञानकाण्ड को समृद्ध करने का बीड़ा उठाया था।"[1]

द्विवेदी युग में हिन्दी में विज्ञान लेखन की और भी साफ तस्वीर के लिए परिशिष्ट : 4 को देखा जा सकता है जिसमें उस युग के महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक लेखों, पुस्तकों, उनके लेखकों, उनके प्रकाशन संस्थान तथा प्रकाशन वर्ष की विस्तृत सूची दी गई है। इस सूची का आधार आर्यभाषा पुस्तकालय (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) की पुस्तक सूची का प्रथम खण्ड है।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग में लिखे जा रहे वैज्ञानिक लेखों की भाषा तथा लेखकों की विषय पर पकड़ के मददेनज़र विभिन्न स्रोतों से ग्यारह चुने हुए लेखों के नमूने और उन पर टिप्पणी के लिए अध्याय चार देखें। अध्याय चार में अधिकांश लेख जान–बूझकर प्रयोजन पूर्वक 'सरस्वती' से ही उठाये गये हैं। इस युग की दूसरी महत्त्वपूर्ण पत्रिका, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में छपे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के दो लेख भी उस समय के हिन्दी सेवियों की वैज्ञानिक समझ को जान सकने के लिए अध्याय–4 में शामिल किए गये हैं।

अंत में कहना चाहूँगा कि, यूँ तो सरस्वती के समानान्तर कई साहित्यिक पत्रिकायें जैसे – 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (पहला अंक 1897 ई0 में, शुरू में त्रैमासिक बाद में 1907–20 ई0 तक मासिक), 'समालोचक' (पहला अंक 1902 में, नागरी भवन, जयपुर से बाबू गोपाल राम गहमर के सम्पादकत्व में), 'इन्दु' (1909 ई. से अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व में काशी से), 'मर्यादा' (नवम्बर 1910 ई. से अभ्युदय प्रेस प्रयाग से, मासिक पत्र पहला अंक), 'प्रभा' (सचित्र

---

[1] राम विलास शर्मा –'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0 1977, पृष्ठ 383.

पहला अंक अप्रैल 1913 ई0 में कालूराम गंगराडे के सम्पादकत्व में मध्यप्रदेश से) तथा 'विज्ञान' (श्रीधर पाठक के सम्पादन में 1915 में इलाहाबाद से) आदि का प्रकाशन होता रहा किन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कुशल सम्पादकत्व (1903 ई0) में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से निकलने वाली मासिक सचित्र पत्रिका सरस्वती की लेखकों और पाठकों के बीच क्रमशः बढ़ती लोकप्रियता के कारण, सरस्वती ही द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण पत्रिका के रूप में उभर कर सामने आई, खासकर विज्ञान–विषयक लेखों के प्रकाशन के संदर्भ में। अगर कोई पत्रिका हिन्दी में विज्ञान लेखन को भाषा और कथ्य दोनों स्तरों पर सरस्वती को टक्कर देने में, उन दिनों सक्षम हुई तो वह थी श्रीधर पाठक के सम्पादकत्व में 'विज्ञान', जो 1913 ई. में विज्ञान परिषद्' प्रयाग की स्थापना के बाद 1915 से निकलने लगी थी। किन्तु बाद में यह पत्रिका विशुद्ध रूप से विज्ञान के विधार्थियों के लिए लिखी जाने लगी। आज सामान्य पाठकों को इस पत्रिका से लाभ उठाने के लिए पहले विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों की अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेना प्राथमिक शर्त है।

अध्याय तीन

'विश्व प्रपञ्च' और विश्व प्रपञ्च की भूमिका' (का महत्व)

द्विवेदी युग के अंतिम कुछ वर्षों में नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने बाबू श्याम सुन्दर दास के सम्पादकत्व में एक मनोरंजन पुस्तक–माला निकालने की योजना बनाई। इसके लिए "1913 ई. में श्याम सुन्दर दास के सम्पादकत्व में विविध विषयों से युक्त ग्रन्थमाला का आयोजन किया गया जिसमें 100 ग्रन्थों को प्रकाशित करने का संकल्प था। इसमें प्रकाशित ग्रन्थों के विषय का चयन भी अत्यन्त गुरूता एवं व्यापकता के साथ किया गया"[1]। विश्व प्रपञ्च का प्रकाशन भी इसी क्रम में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी।

मनोरंजन पुस्तक माला के "33 वें और 34 वें"[2] पुष्प के रूप में "यह ग्रन्थ पहले दो खण्डों में संवत् 1977 में प्रकाशित हुआ था और इसे अब उपयोगिता की दृष्टि से एक खण्ड में कर दिया गया है"।[3]

उपरोक्त दोनों उद्धरण क्रमशः 1 और 3 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित 'विश्व प्रपञ्च' के प्रकाशकीय से लिए गये हैं। उद्धरण 2, विश्व प्रपञ्च के मुख–पृष्ठ पर चिन्हित जानकारी है।

यह 'विश्व प्रपञ्च', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हैकेल की पुस्तक 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' का हिन्दी अनुवाद है।

आगे बढ़ने से पहले मूल पुस्तक "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" के बारे में कुछ बातें –

'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स', यह नाम मूल पुस्तक जो कि जर्मन भाषा में हैकेल ने लिखी थी के अंग्रेज़ी अनुवाद का नाम है। मूल पुस्तक का नाम, 'डी वेल्ट रैथसेल ***"die Welträthsel"*** है। इस बात की जानकारी सर ओलिवर

लॉज की पुस्तक 'लाइफ एण्ड मैटर' के चतुर्थ संस्करण 1904 के पृष्ठ 30 से प्राप्त हो सकी है। 'लाइफ एण्ड मैटर', हैकेल की 'द रिडिल ... ' पर सबसे प्रामाणिक और स्तरीय आलोचना ग्रन्थ है।

'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' नाम से 'डी वेल्टरैथसेल' का अंग्रेजी अनुवाद हैकेल के ही शिष्य और अनुयायी जोसेफ मैक्कैब ने किया है।

मैंने इस लघु–शोध–प्रबन्ध के लिए "द रिडिल ..." जिस संस्करण को संदर्भ के रूप में अपनाया है वह "वाट्स एण्ड कम्पनी, लन्दन" द्वारा 'रेशनलिस्ट प्रेस' एसोसिएशन के लिए छापा गया 1911 ई0 का 'आठवाँ संस्करण' है। इस संस्करण की विशेषता इसका भूमिका भाग है, जिसमें रिडिल के तत्कालीन आलाचकों द्वारा की गई आलाचनाओं तथा उनके द्वारा उठाये गये कुछ महत्त्वपूर्ण सवालों के जवाब देने का प्रयास अनुवादक द्वारा किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "द रिडिल ..." का परिचय कुछ इस प्रकार है –

"आज जर्मनी के जगद्विख्यात प्राणितत्ववेत्ता हैकेल की परम प्रसिद्ध पुस्तक 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' हिन्दी पढ़ने वालों के सामने रखी जाती है। यह अनात्मवादी आधिभौतिक पक्ष का सिद्धांत संग्रह है जिन्हें भूतवादी अपने पक्ष के प्रमाण में उपस्थित करते हैं।"

यह उद्धरण 'विश्व प्रपञ्च' के 1962 ई. के संस्करण में छपे 'प्रथम संस्करण का वक्तव्य' से लिया गया है।

हैकेल के समकालीन तथा "द रिडिल ..." के उस समय के सबसे चर्चित समीक्षक तथा यूनिवर्सिटी ऑव बर्मिघंम इंग्लैण्ड में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक सर ऑलिवर लॉज के शब्दों में "द रिडिल..." का परिचय कुछ इस प्रकार है –

"The most striking instance of a scientific man who on entering philosophic territory has exhibited signs of exhiliration and emancipation, is furnished by the case of Professor Haeckel of Jena. In an eloquent and popular work, entitled die Weltrathsel, the World Problem, or "The Riddle Of The Universe", this eminent biologist has surveyed the whole range of existence, from the foundations of physics to the comparision of religions, from the facts of anatomy to the freedom of the will, from the vitality of cells to the attributes of God. "

यह उद्धरण 'सर आलिवर लॉज'[1] के 'लाइफ एण्ड मैटर' के जिस संस्करण की चर्चा पीछे की गई है उसी के पृष्ठ 3 से लिया गया है। इस उद्धरण का भाव इस प्रकार है –

विज्ञान के एक आदमी, जिसने दर्शन के क्षेत्र में अभी अभी कदम रखा हो, का काम कितना विचारोत्तेजक और आनन्ददायक हो सकता है इस बात का ज्ञान जेना विश्वविद्यालय, जर्मनी के प्राध्यापक हैकेल की अत्यन्त लोकप्रिय कृति 'डी वेल्ट रैथसेल' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'विश्व की समस्यायें' अथवा "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" को देखकर लगाया जा सकता है। इस प्रख्यात जीव

---

[1] सर ऑलिवर लॉज बीसवीं सदी के प्रमुख दार्शनिक – वैज्ञानिक रहें हैं। इनके योगदान और विचारधारा की चर्चा शुक्ल जी ने विश प्रपञ्च में पृ0 83 और 88 पर की है। ये मूलतः आत्मवादी थे। 'द रिडिल...' की भूमिका में भी अनुवादक जोसेफ मेंक्कैब ने इन पर जमकर बात की है। ये हैकेल के विरोधी खेमें के विचारक थे। इनके साथ प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी लार्ड केल्विन का भी नाम शुक्ल जी ने लिया है।

वैज्ञानिक ने अपनी इस कृति में भौतिकी के मूल सिद्धान्तों से लेकर धर्मों की तुलना तक, शरीर–रचना–विज्ञान के आधारभूत तथ्यों से लेकर इच्छा की मुक्ति तथा नन्हीं–नन्हीं कोशिकाओं में बन्द ऊर्जा से लेकर ईश्वर के गुणों तक अस्तित्व सम्बन्धी तमाम प्रश्नों का एक व्यापक तथा बहुआयामी सर्वेक्षण किया है।

विज्ञान और दर्शन का परस्पर अलगाव, जैसा कि सर ऑलिवर लॉज ने अपने लेख में टेरीटरी ***(territory)*** शब्द का प्रयोग करके बतलाना चाहा है, उस युग ही नहीं बल्कि बहुत पहले से लेकर आज तक के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के ज्ञान तन्तुओं को छेड़ता रहा है। कुछ इस अलगाव को हितकारी मानते हुए विज्ञान और दर्शन के पार्थक्य को बनाये रखने की दलील देते हैं। (जैसे ऑलिवर लॉज, डॉ. सैलीबी, बैलार्ड आदि) तो कुछ विचारक जिनमें लॉयड–मार्गन, मॉरीज, मैक्कैब के साथ–साथ प्रोफेसर हैकेल भी है, इस पार्थक्य को न केवल समाप्त करने की पेशकश करते हैं बल्कि इसे ज्ञान की पद्धति के विकास के लिये घातक भी मानते हैं। हैकेल लिखते हैं–

"This unnatural and fatal opposition between Science and Philosophy, between the results of experience and of thought, in undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[1]

अर्थात यह जो अस्वाभाविक (जान–बूझकर सायास पैदा किया गया) और घातक विरोध है, दर्शन और विज्ञान के बीच, अनुभवजन्य (प्रयोग–सम्मत) और कोरे विचारों (मानसिक विलास) से उपज परिणामों के बीच, निश्चित रूप से

---

[1] *The Riddle of the Universe- Author's preface;, Page xv*

विचार प्रधान व्यक्तियों के लिये अधिकाधिक कष्टमय बात साबित होती जा रही है।

'द इम्पैक्ट ऑव साइन्स ऑन सोसायटी' ***(The Impact of Science On Society)*** में बर्ट्रेण्ड रसेल ***(Bertrand Russell)*** ने भी इसी विडम्बना की ओर संकेत करते हुए लिखा कि–

"Science, ever since the time of the Arabs, has had two functions: (1) to enable us to know things, and (2) to enable us to do things. The Greeks, with the exception of Archimedes, were only interested in the first of these. They had much curiosity about the world but, since civilised people lived comfortably on slave labour, they had no interest in techinque."[1]

अर्थात विज्ञान अरबों के समय से ही दो काम करता रहा है–

(1) यह विश्व क्या है? और कैसा है? इसकी जानकारी देने का काम।

(2) यह विश्व ऐसा क्यों है? और कुछ प्रयत्नों से इसे किस तरह और बेहतर बनाया जा सकता है? यूनानी लोग, आर्किमिडीज (वैज्ञानिक) को छोड़कर केवल पहले वाले हिस्से में ही अधिक रूचि लेते रहे हैं। उन्होंने इस विश्व को जानने समझने की जिज्ञासा तो बहुत दिखाई परन्तु तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास में कोई रूचि नहीं दिखाई।

रसेल के इस उद्धरण से तीन बातें खुलकर सामने आती हैं पहली तो यह कि– जिसे हम दर्शन कहते हैं और जो जगत की समस्याओं को वैचारिक स्तर

---

[1] *Bertrand Russell - The Impact of science on society: Routledge Publication; Reprinted 2003; chapter 2 page 29*

पर केवल विवाद का विषय बनाकर छोड़ देता है वह और कुछ नहीं विज्ञान का ही एक पक्ष है, जो निश्चित रूप से अपने ही दूसरे पक्ष जिसमें कुछ करने वाला भाव निहित है से कम श्रेष्ठ है। इस बात को रसेल ने आर्किमिडीज का उदाहरण लेकर और साफ कर दिया है। दूसरी बात यह कि– विज्ञान के उस दूसरे पक्ष जिसमें कुछ करने वाला भाव निहित है का प्रयोग, तकनीक के माध्यम से समाज की बेहतरी के लिये ही होना चाहिए। तीसरी बात कुछ अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इस बात से, विज्ञान के विकास का कैसा सम्बन्ध समाज के विभिन्न पहलुओं से बनता है?, की कुछ जानकारी मिलती है। इसके लिये रसेल ने दास–प्रथा का उदाहरण लेकर यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह दासों पर आश्रित रहने वाले लोग विज्ञान और तकनीक के विकास की आवश्यकता नहीं समझ पाते। रसेल द्वारा दिया गया यह तर्क हालाँकि पक्ष–विपक्ष को तैय्यार कर सकता है, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि विज्ञान का उद्भव, विकास और प्रसार वस्तुतः जीवन की कठिनाइयों से लड़ने और उनके समाधान के क्रम में ही हुआ है। जिस समाज में ऐसा न हो सका वहाँ जीवन की छोटी से छोटी कठिनाई को भी दैव प्रदत्त मानकर उसकी अनेकानेक व्याख्याओं के लिये अटपटी मान्यताओं, धारणाओं और व्यवस्थाओं का सहारा लिया गया और फिर धर्म, ईश्वर तथा इनकी मनमानी व्याख्या करने वाले सामन्त–सहयोगियों की फसल बहुत ही स्वाभाविक रूप से बढ़ती रही। वास्तव में दास–प्रथा (या इसी प्रकार की और भी समाज–विरोधी) सम्बन्धी रसेल के तर्क का, इशारा इसी विडम्बना की ओर है कि यह न सिर्फ विज्ञान के विकास को नकारता है बल्कि विज्ञान के विकास की संभावनाओं को भी नष्ट करने का प्रयत्नपूर्वक उद्यम करता है। मध्ययुग, (चाहे भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में देख लें या कट्टरपंथी चर्च के चंगुल में फँसे यूरोपीय समाज के इतिहास को), में वैज्ञानिक विकास को जो क्षति पहुँची वह जगजाहिर है। या फिर कुछ प्रयत्न यदि हुए भी तो उनका एकमेव उद्देश्य रहा ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का।

न्यूटन (1642 ई.–1727 ई.) का सारा प्रपञ्च परोक्ष रूप से वस्तुतः इसी हेतु की सिद्धि के लिए रहा।

"The philosophy which has seemed appropriate to science has varied from time to time. To Newton and most of his English Contemporaries science seemed to afford proof of the existence of God as the Almighty Law giver." [1]

थोड़े से विषयान्तर के बाद पुनः लौटेते हैं हैकेल और उसकी 'द रिडिल ...' की ओर। हैकेल (1834–1919) का पूरा नाम अन्र्स्ट हिनरिच हैकेल ***(Ernst Heinrich Haeckel)*** था। जर्मनी के एक छोटे से शहर पोडैम ***(potsdam)*** से आने वाले इस वैज्ञानिक ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपने 'रिकैपिचुलेशन' के सिद्धान्त से वैज्ञानिक हलके में बडी धूम मचाई थी। यह सिद्धान्त 1865 ई. में दिया गया था। रिकैपिचुलेशन का अर्थ है पुनरावृत्ति/दोहराव।

---

[1] *Bertrand Russell - The Impact of science on society: Routledge Publication; Reprinted 2003; chapter 6 page 90.*

इस सिद्धान्त के अनुसार–

"Ontogeny repeats phylogeny (embryonic stages represent past stages in the organism's evolution)" ✸●

अर्थात्

'सम्पूर्ण जाति/वंश ***(species/genus)*** के विकास लक्षण एक अकेले व्यक्ति या उस जाति/वंश के सदस्य के विकास लक्षण में दोहराये जाते हैं।' ध्यान देने की बात यह है कि यह सिद्धान्त मूलतः भ्रूण विकास के सन्दर्भ में दिया गया था। कहने का आशय यह है कि मनुष्य और हमारे पूर्वज वनमानुषों ***(apes)*** के भ्रूण निश्चित रूप से एक ही विकास प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने हैकेल के इस सिद्धान्त को पुनर्जन्म का सांकेतिक सिद्धान्त कहकर खारिज कर दिया और आज वस्तुतः यह सिद्धान्त इतना प्रभावी नहीं रह गया है किन्तु इससे भ्रूणविज्ञान के विकास को अधिकाधिक मदद मिल सकी है।

हैकेल का दूसरा बड़ा योगदान 'इकोलोजी' ***(ecology)*** नामक शब्द गढ़ने का है। 1869 ई. में इकोलोजी नामक विज्ञान का जन्मदाता हैकेल ही था। इकोलोजी का अर्थ होता है पारिस्थितिकी विज्ञान। इसके अन्तर्गत एक ही पारिस्थितिकी–तन्त्र ***(eco-system)*** में रहने वाले जीव–जन्तुओं ***(Fauna),*** वनस्पतियों ***(Flora)*** तथा सूक्ष्म जीवाणुओं ***(Micro-organisms)*** के पारस्परिक सम्बन्ध तथा एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन सम्बन्धों का, व्यापक स्तर पर, समूची प्रकृति और पर्यावरण

✸ संक्षेप में इस सिद्धान्त को जानने के लिये देखें ***The Words worth Encylopaedia, Vol 3 Helicon Pub. Ltd' 1995, Page 967,*** या फिर विस्तार से जाने के लिए 'द रिडिल...' के अध्याय IV, VIII और IX ।

● देखें 'द रिडिल...' पृ. 95, तथा पृ. 29 ***"Ontogenesis is a brief and rapid recapitulation of phylogenesis"***

पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन इकोलोजी के अन्तर्गत ही किया जाता है। व्यापक स्तर पर देखें, तो इकोलोजी पर्यावरण विज्ञान ***(Environmental Science)*** की एक शाखा के रूप में आज जानी जाती है और इसका महत्व विशेषकर आज के युग में और भी अधिक बढ़ गया है। जिज्ञासु जन हैकेल के कामों को विस्तृत रूप में जानने के लिये निम्नलिखित पुस्तकें देख सकते हैं–

1. बेसिक इकोलोजी ***(Basic Ecology-E.P. Odum Holt-seunders Intl. ed. Japan)***

2. इसेन्शियल्स ऑव इकोलोजी ***(Essentials of Ecology)-Townsend C.R. Harper John L., Begon Michael Blackwell Science Publication.***

3. द इकॉनमी ऑव नेचर ***(The economy of Nature)-Robert E. Ricklefs. W.H. Freeman Publication, New York.***

या फिर 'इकोलोजी एण्ड इन्वायरनमेन्ट' ***(Ecology and Environment),*** द्वारा– पी.डी.शर्मा (दिल्ली विश्वविद्यालय) रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ भी देखी जा सकती है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध का हैकेल बहुत महत्वपूर्ण वैज्ञानिक था। वह डार्विन के 'विकासवाद' (1859 ई.) और जीन लैमार्क (1809 ई.) के 'अनवरत विकास सिद्धान्त' से बहुत प्रभावित था। डार्विन के विकासवाद से तो वह इतना प्रभावित था कि उसने डार्विन को जैव–जगत का कोपरनिकस तक कह दिया– ***"Darwin is the Copernicus of the organic world".***[1]

हैकेल, डार्विन का समकालीन था। डार्विन के विकासवाद से प्रेरित होकर हैकेल ने इस सिद्धान्त को मनोविज्ञान और दर्शन की गूढ़ समस्याओं पर भी आरोपित करके देखने का प्रयास किया। दुर्भाग्य से वह असफल रहा, मैनें इसकी संक्षिप्त चर्चा इसी अध्याय में आगे यथास्थान की है।

हैकेल के विषय में आगे बढ़ने से पहले मैं उसके पुस्तकों की विस्तृत सूची अभी तत्काल देना चाहूँगा क्योंकि इनके संदर्भ से ही कुछ और बातें आगे खुलेंगी।

---

[1] 'द रिडिल...' पृष्ठ 90.

हैकेल के पुस्तकों की सूची*

1. फिलासफी ऑव द कैल्सिसपोन्जिया *(Philosophy of the Calcispongia)* *1872* ई.
2. नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन *(Natural History of Creation)* *1868*
3. एन्थ्रोपोजेनी *(Anthropogeny)* *1874* ई.
4. जेनरल मॉरफोलोजी ऑव आर्गेनिज्म्स *(General Morphology of Organisms)* *1866* ई.
5. सिस्टेमेटिक फिलोजेनी *(Systemetic phylogeny) -1894* ई., *1895* ई., *1896* ई.
6. थियरी ऑव गैस्ट्रिया *(Theory of Gastrea)* *1872* ई.
7. स्टडीज ऑव द गैस्ट्रिया थियरी *(Studies of the Gastrea theory)- 1873 ई., 1874* ई.
8. फ्री साइन्स एण्ड फ्री टीचिंग *(Free science and Free teaching)- 1878* ई.
9. जेनरल नेचुरल हिस्ट्री ऑव द रेडियोलेरिया *(General natural history of the radiolaria).* *1887* ई.
10. द पेरिजेनेसिस ऑव द प्लैस्टिड्यूल *(The Peregenesis of the Plastidule)* *1876* ई.
11. मोनिज्म बाई हैकेल- *(Monism By Haeckel)*
12. द लास्ट लिंक (अनु. डॉ. गैडो) *-(The Last Link; tr. Dr. Gadow)*

---

* सभी सन्दर्भ 'द रिडिल ... के अग्रलिखित पृष्ठों से

1. पृ. 21, 2.पृ. 24 ,3. पृ. 27, 4. पृ. 28, 5. पृ. 29, 6. पृ. 57, 7. पृ. 29 8. पृ. 34 9. पृ. 42, 10. पृ. 54, 11.पृ.79, (पाद टिप्पणी), 12. पृ. 90 (पाद टिप्पणी) 13. और 14. 'द रिडिल... के अंतिम कुछ पृष्ठों से (पृ. 142, 143 तथा 144)

13. द इवोल्यूशन ऑव मैन *(The Evolution of man)*

14. वन्डर्स ऑव लाइफ़ *(Wonders of Life)*

कुछ पुस्तकों के आगे उनके प्रकाशन वर्ष नहीं दिए जा रहे हैं, उपलब्ध स्रोत से यह जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

हैकेल की इन पुस्तकों में, 1868 ई. की 'नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' स्वयं लेखक की अपनी अपेक्षा से अधिक लोकप्रिय हुई थी और 1899[1] ई. में 'द रिडिल ....' के लिखे जाने तक यह हैकेल की परमप्रसिद्ध कृतियों में समझी जाती रही।

"If the success of my General Morphology was far below my reasonable anticipation, that of The Natural History of creation went far beyond it."[2]

'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' में हैकेल ने लैमार्क, और डार्विन के विकास सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की है (देखें द रिडिल... ' का पृ. 29)। 'जनरल मॉरफोलोजी में हैकेल पहली बार शरीर के अन्दर के भागों के विकास सिद्धांत के बारे में भी ब्यौरा प्रस्तुत करता है। इसका पहला खण्ड 'जनरल एनेटॉमी' तथा दूसरा खण्ड 'जनरल इवोल्यूशन' पर केन्द्रित है (देखें वही पृ. 29)। इन दो पुस्तकों के बाद हैकेल की दो और पुस्तकें 1874 ई. तथा 1896 ई. में क्रमशः 'एन्थ्रोपोजेनी' (***Anthropogeny***) तथा 'सिस्टेमेटिक फिलोजेनी' ***(Systemetic Phylogeny)*** अधिक चर्चित रहीं। इन पुस्तकों में हैकेल, विकास सिद्धांत का दायरा जैव–विकास से बढ़ाकर समस्त जगत की स्थूल वस्तुओं के

---

1 'द रिडिल ...' 1899 में ही लिखी गई थी इस पर सप्रमाण चर्चा आगे।

2 'द रिडिल ...' पृ. 29 ; प्रथम स्तम्भ, प्रथम अनुच्छेद

विकास तक ले गया। किन्तु जीवन–जगत की स्थूल संरचनाओं के क्रमिक विकास की व्याख्या के बाद जब वह 'द रिडिल .... ' में डार्विन के विकास सिद्धांत को आत्मा, ईश्वर, मनोविकारों और मानव–व्यवहारों पर लागू करते हुए इन्हें पूर्णतः भ्रौणिक ***(embryonic)*** और इसलिए विशुद्धतः भौतिक विकास के अधीन बताता है तब हैकेल अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों से बिल्कुल अलग और मौलिक बात करता है और अब हैकेल 'द नेचुरल हिस्ट्री ऑव क्रियेशन' और 'सिस्टेमेटिक फिलोजेनी' के लेखक के रूप में नहीं बल्कि 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' के लेखक के रूप में जाना जाने लगता है। यह सब संभव होता है 1899 ई. के बाद। यह एक विचित्र संयोग है ही कि जर्मनी के ही दो वैज्ञानिक ई.एच. हैकेल और मैक्स प्लैंक दोनों 1899 ई. में अपनी–अपनी प्रस्थापनायें विज्ञान की दो उन्नत और शाखाओ क्रमशः प्राणिविज्ञान और भौतिक विज्ञान में दे रहे थे। बता दूँ कि दोनों के सिद्धांतों का मूल स्रोत डार्विन का विकास सिद्धांत ही था।

आश्चर्य की बात है कि हिन्दी साहित्य में आचार्य शुक्ल के 'विश्व प्रपञ्च' के बाद से आज तक जहाँ कहीं भी दो–चार स्थानों पर इस पुस्तक ('द रिडिल ...') का जिक्र मिलता है, कहीं भी इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई पुष्ट जानकारी नहीं मिलती। इस संदर्भ में सर्वाधिक लोकप्रिय स्रोत डॉ. नामवर सिंह द्वारा सम्पादित चिन्तामणि–3 में भी नहीं। जबकि स्वयं 'द रिडिल ...' के पन्नों में इस बात के कई प्रमाण उपलब्ध हैं कि 'द रिडिल ...' का इतिहास आज से लगभग एक सौ पाँच साल पुराना है।

इनमें से दो प्रमाणों के साथ मैं यहाँ आगे कहना चाहूँगा कि 'दि रिडिल .. .' का रचनाकाल 1899 ई. का है।

पहला प्रमाण ('द रिडिल ...' के पृष्ठ 22 पर)

"Those are the main points of my "gastrea theory" in a series of "studies of the gastrea theory"(1873-1884)".x x x It is now (... for the last fifteen years) accepted by nearly all my colleagues".

सन् 1884 ई. तक हैकेल की 'स्टडीज़ ऑव द गैस्ट्रिया थियरी' सिरीज़ छपती रही। हैकेल के अनुसार आरंभ में इसका खूब विरोध हुआ किन्तु आज पिछले पन्द्रह सालों से यह सिद्धांत सर्वमान्य हो गया है। मैं कहना चाहूँगा, यह बात हैकेल महोदय जब 'द रिडिल ...' में लिख रहे हैं तब गणित के सामान्य योग नियम से सन् 1884 के आगे 15 वर्ष, सन् 1899 ई. हो हुआ। इसलिए 'द रिडिल ...' का रचनाकल 1899 ई. ठहरता है।

दूसरा प्रमाण ('द रिडिल ...' के पृष्ठ 26 पर)

"For these reasons it can easily be understood... theory of origins... fierce controversy, in the course of the last forty years".

यह जो थियरी ऑव ओरिजिन्स की बात हैकेल ने कही है वह 1859 ई. में छपी डारविन की 'द ओरिजिन ऑव स्पिसीज़' के संदर्भ में कही है और आगे हैकेल ने बताया है कि किस तरह पिछले चालीस वर्षों में यह "जैवोत्पत्ति–सिद्धांत" कितना सशक्त होकर उभरा है। इस प्रकार, जब यह बात हैकेल महोदय 'द रिडिल ...' में लिख रहे होते हैं तब पिछले चालीस वर्ष ***("the last forty years")*** कहकर डार्विन (1859 ई.) तक तभी पहुँचा जा सकता है जब 'द रिडिल' कर रचनाकाल 1899 ई. हो क्योंकि पुनः गणित के सामान्य अंतर नियम से सन् 1899 में 40 वर्ष निकालने पर ही सन् 1859 आयेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि 'दि रिडिल ...' का रचनाकाल 1899 ई. ही है। वैसे इस आशय की जानकारी कि ' द रिडिल ...' का रचनाकाल 1899 ई. 'दि रिडिल ...' के 'आथर्स प्रिफेस' से भी मिल जाती है।

कुल बीस अध्यायों में विभक्त 'द रिडिल ...' को विवेचन और विश्लेषण की सुविधा के लिए तीन प्रमुख विभागों में बाँटा जा सकता है।

पहला, बाह्य जगत के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन (अध्याय 1 से अध्याय 5 तथा अध्याय 12 से अध्याय 14) ;

दूसरा, अन्तर्जगत (मन/आत्मा) के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन (अध्याय 6 से अध्याय 11) ;

तीसरा और अंतिम, संपूर्ण जगत के विकास का दार्शनिक विवेचन तथा एकेश्वरवाद (अध्याय 15 से अध्याय 20)।

इन अध्यायों में से अध्याय 5 'मनुष्य की उत्पत्ति' (द हिस्ट्री ऑफ आवर स्पिसीज़) तथा अध्याय 8 'आत्मा का गर्भ विकास' (द इम्ब्रायोलॉजी ऑफ सोल) विकासवाद को ठीक से समझने के लिए विशेष महत्त्व के हैं जबकि अध्याय 17, 'विज्ञान और ईसाई मत' (साइन्स एण्ड क्रिश्चियेनिटी) इस बात को समझने में सहायता प्रदान करता है कि "इस पुस्तक ने सबसे अधिक खलबली पादरियों के बीच (क्यों) डाली जिनकी गालियों से भरी हुई सैकड़ों पुस्तकें इसके प्रतिवाद में निकली।" [1]

वैज्ञानिक हैकेल ने चर्च की मतान्धता को वैज्ञानिक नज़रिये से देखने का आग्रह, 'दि रिडिल' में किया है। 'द रिडिल' जिसका शाब्दिक अर्थ विश्व की समस्यायें हुआ, ऐसी ही कई अन्य जीवन जगत की समस्याओं पर बहस छेड़ती है। इन समस्याओं में मनोविज्ञान संबधी समस्यायें, धर्म और दर्शन संबधी बहसें, जीवन की उत्पत्ति और विकास संबधी अनेक उलझनों का निराकारण, विज्ञान और प्रकृति के मूलभूत नियमों की जाँच पड़ताल और विश्लेषण से जुड़ी समस्यायें आदि शामिल हैं।

अपने इस लघुशोध प्रबंध के लिए मैनें 'द रिडिल ...' के जिस संस्करण को आधार बनाया है वह वॉट्स एण्ड कंपनी, लंदन द्वारा छापा गया आठवाँ संस्करण है। 1911 ई. में यह संस्करण छापा गया था। जैसा कि पहले ही बताया गया कि 'द रिडिल ...' नाम अनुवादक जोसेफ़ मैक्कैब का दिया गया है,

---

1. विश्व प्रपंच के प्रथम संस्करण का वक्तव्य

ठीक उसी तर्ज़ पर विश्व प्रपंच नाम आचार्य शुक्ल द्वारा दिया गया। 'विश्व प्रपञ्च' में जोसेफ मैक्केब संबधी एक सूचना इस प्रकार है –

"हैकेल की पुस्तक के जिस अंग्रेजी भाषान्तर का यह हिन्दी अनुवाद है वह जोसेफ मैक्कैब का किया हुआ है। इन्होनें हैकेल का एक जीवन चरित्र और हैकेल पर किए हुए आक्षेपों के उत्तर में एक पुस्तक भी लिखी है"[1]। आचार्य शुक्ल द्वारा दी गई हैकेल की दो पुस्तकों की जानकारी के अतिरिक्त मैं जोसेफ मैक्कैब की पुस्तकों की सूची में कुछ नाम और जोड़ना चाहूँगा–

जोसेफ़ मैक्कैब की पुस्तकों की सूची

1. द रिलिजन ऑव वुमन	***The religion of woman***
2.वुमन इन पॉलिटिकल इवोल्यूशन	***Woman in Political Evolution***
3. द मार्टिरडम ऑव फ़ेरर	***The martyrdom of Ferrer***
4. द ट्रुथ अबाउट सैक्युलर एडुकेशन	***The truth about secular education***
5. फ्रॉम रोम टू रेश्नलिज़्म	***From Rome to Rationalism***
6. व्हाई आई लेफ्ट द चर्च	***Why I left the Church***
7. अ हन्ड्रेड इयर्स ऑव एडुकेशनल कन्ट्रोवर्सी	***A Hundred Years of Educationa Controversy)***
8*. द राइज़ ऑव क्रिश्चैनिटी	***The rise of Christianity***
(*मूल पुस्तक का लेखक अल्बर्ट कैल्टॉफ है। यह जोसेफ मैक्कैब द्वारा किया गया अनुवाद (अंग्रेजी) है।)	
9. द लाइफ एण्ड लेटर्स ऑव जॉर्ज जैकब हेलियोक	***The Life and Letters of George Jacob Halyoake***
10. द बाइबिल इन यूरोप	***The Bible in Europe***

मैक्कैब की इन सभी पुस्तकों का संदर्भ 'द रिडिल ...' के अंतिम कुछ पृष्ठ (पृ. 142, पृ. 143 तथा पृ. 144) हैं।

जोसेफ़ जैक्फैब सम्बन्धी जानकारी के बाद अब पुनः लौटते हैं 'द रिडिल ...' और विश्व प्रपञ्च की ओर।

'द रिडिल आवॅ द यूनिवर्स' के मूल पाठ और विश्व प्रपंच की चौरानबे–पृष्ठीय भूमिका में एक विशेष सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का अर्थ और यह सम्बन्ध किन अर्थों में विशेष है? बिना इसकी जानकारी के ना तो विश्व प्रपञ्च की भूमिका का महत्व समझ में आ सकता है और ना ही 'विश्व प्रपञ्च' के रूप में शुक्ल जी द्वारा 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' का अनुवाद के लिये चयन का उद्देश्य।

'द रिडिल...' से होकर गुजरते हुए पाठक यह पायेंगे कि पूरी पुस्तक केवल पाँच स्तम्भों पर टिकी है। केन्द्रीय स्तम्भ है, लैमार्क (1809 ई.) और चार्ल्स डार्विन (1859 ई.) का विकासवाद। इसमें जीव और जगत की उत्पत्ति–विषयक सिद्धान्तों की विवेचना उन सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता–अवैज्ञानिकता की पड़ताल तथा जीवन के उद्भव और विकास की वैज्ञानिक व्याख्या पर एक बहस और उसका विश्लेषण सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त अन्य चार स्तम्भों में से दो स्तम्भ आधुनिक विज्ञान के दो मूलभूत सिद्धान्तों–द्रव्य तथा शक्ति के अन्तस्सम्बन्ध और उनकी अक्षरता तथा प्लाँक (1890 ई.) द्वारा प्रतिपादित कण–भौतिकी के सामान्य नियम, विकासवाद के लिये वैज्ञानिक आधार तैयार करते हैं तथा बाकी के दो स्तम्भ वैज्ञानिक विकासवाद से समर्थन और शक्ति ग्रहण कर तत्कालीन योरप (यूरोप) में ज्ञान–विज्ञान की मुख्यतः दो शाखाओं – दर्शन तथा मनोविज्ञान में आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत, प्रकृति–ईश्वर, चित्त–मनोविकार, संवेदन–जड़ता आदि अनेकानेक विमर्शों पर चल रही बहसों के वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से अन्ततः ऐकेश्वरवाद की प्रस्थापना में मूर्त रूप को प्राप्त होते जान पड़ते हैं। इन सभी बातों की विधिवत् चर्चा इसी अध्याय के खण्ड 2 में यथास्थान की जा चुकी है। यहाँ हम पुनः विश्व प्रपञ्च की भूमिका की ओर लौटते हैं।

विश्व प्रपञ्च की भूमिका का विकास भी आचार्य शुक्ल ने 'द रिडिल .. ' के संदर्भ में ऊपर बताई गई योजना के अनुरूप ही किया है। इस भूमिका के माध्यम से पाठकों के लिए विषय को बोधगम्य तथा सहज बनाकर हिंदी समाज में तद्युगीन वैज्ञानिक विमर्शों के प्रचार–प्रचार का, आचार्य शुक्ल का, प्रयास निश्चित रूप से ऐतिहासिक महत्व का है। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि आज हिंदी सहित्य में तमाम बुद्धिजीवियों, विद्यार्थियों, साहित्यकारों को शुक्ल जी के इस प्रयास और इसके महत्व की जानकारी तक नहीं है और है भी तो लापरवाही भरी–सतही तौर पर, केवल सूचनापरक और काम चलाऊ जानकारी ही है। कारण बहुत साफ है– हिंदी भाषी पाठकों, विशेषकर हिन्दी साहित्य के मठाधीशों में विज्ञान को लेकर भयजनित लाचारी और शुक्लजी के कामों के प्रति एक अवैज्ञानिक समझ।

पूर्णतः आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि यह भूमिका हिन्दी भाषी पाठकों विशेषकर हिन्दी साहित्य के अध्येताओं की विज्ञान–विषयक सामान्य समझदारी को अधिकाधिक मात्रा में पुष्ट कर सकने में सक्षम है। इतना ही नहीं स्वयं शुक्ल जी की चिन्तनपद्धति को भी, यह भूमिका, नये सिरे से देखने के लिए पाठकों को उत्साह पूर्वक आमन्त्रित करती है।

'विश्व प्रपञ्च' का भूमिका भाग, जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है, पाँच प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है। पहला भाग, जो लगभग आरम्भ के बारह–तेरह पृष्ठों में फैला है, मुख्यतः द्रव्य और शक्ति के परस्पर सम्बन्ध को रेखाकिंत करते हुए उसके महत्व को विकासवाद की सार्थकता से जोड़ता है। भूमिका में इसके आगे के लगभग तीस–इकतीस पृष्ठों में डार्विन के विकासवाद के साथ–साथ जीवों के विकासक्रम सम्बन्धी नाना प्रकार के विकास सिद्धान्तों की चर्चा है। इन आरम्भिक चालीस–पैंतालीस पृष्ठों के बाद आगे के लगभग पचास पृष्ठों में से कुछ पृष्ठ (ठीक–ठीक कहें तो 2–3 पृष्ठों पृ. 83,84,85) प्लॉक की कण भौतिकी को समर्पित हैं, शेष पृष्ठों मे स्पेंसर आदि दार्शनिकों के

महत्व की चर्चा डार्विन के विकासवाद के बरक्स की गई है और यह बताया गया है कि "विकासवाद को दार्शनिक रूप हर्बट स्पेन्सर द्वारा ही प्राप्त हुआ है।"[1] इसी भाग में भारतीय दर्शन में एकेश्वरवाद और उससे सम्बन्धित विभिन्न विचारों को विकासवाद के साथ जोड़कर (ध्यातव्य है 'द रिडिल ...'– मूल पाठ में भी हैकेल की सारी चर्चा का चरम ऐकेश्वरवाद (मोनिज़्म) की प्रस्थापना के रूप में होता है।) देखने का प्रयास किया गया है। इस दूसरे महाभाग जिसके दो भागों का ज़िक्र (प्लाँक के कण भौतिकी के नियम और विकासवाद का दार्शनिक स्वरूप) ऊपर किया गया है का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा वह है जिसमें मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों हल के रूप में डार्विन के विकासवाद की चर्चा की गई है। हैकेल ने भी 'द रिडिल .. ' में मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों, की जटिलता और उनके समाधान में विकासवाद के योगदान, को एक चुनौती के रूप में देखा है। मनोविज्ञान सम्बन्धी यह विश्लेषण दूसरे महाभाग को पहले भाग से जोड़ने का काम करता है। इस प्रकार से ये पाँच भाग पूरे होते हैं।

'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका के इन पांचों भागों को अध्ययन और विवेचन की सुविधा के लिए पुनः दस उप–भागों में बाँटा जा सकता है–

---

[1] 'विश्व प्रपञ्च' भूमिका भाग, पृष्ठ 64.

विश्व प्रपंच की भूमिका (परिचय)

(A)प्रकृति के नियम	(B) विकासवाद	(C) मनोविज्ञान	(D) दार्शनिक पक्ष	(E) मोनिज़्म
1.द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध तथा उनके संरक्षण सम्बन्धी सिद्धान्त का अनुप्रयोग 2.आकाश ***(Space)*** और ईथर सम्बन्धी अवधारणा का विवेचन	3. पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति और पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप 4. प्राणियों की शरीर रचना लैमार्कवाद और अनुकूलन तथा विकास सिद्धान्त की पृष्ठीूमि 5. डार्विन का विकासवाद सिद्धान्त और उसका अनुप्रयोग तथा "विकास परम सत्य है" की घोषणा	6.मस्तिष्क, संवेदनशीलता, चेतन–अचेतन का विकासवाद के प्रकाश में विश्लेषण तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी कुछ उत्तेजक प्रश्नों की चर्चा	7. स्पेन्सर द्वारा विकास सिद्धान्त की दार्शनिक व्याख्या 8. यह जगत क्या है? एक दार्शनिक विवेचन (काँट) 9. हीगेल और उसक पश्चात्वर्ती दर्शन	10. प्लाँक के क्वाँटम भौतिकी के सिद्धान्त एवं उनका विकासवाद से सम्बन्ध तथा एकेश्वरवाद (मोनिज़्म) की प्रस्थापना के रूप में विषय का चरमोत्कर्ष

1. द्रव्य और शक्ति का सम्बन्ध

"द्रव्य और शक्ति का नित्य सम्बन्ध है। एक की भावना दूसरे के बिना हो ही नहीं सकती। न शक्ति के बिना द्रव्य रह सकता है और न द्रव्य के आश्रय के बिना शक्ति कार्य कर सकती है।"[1]

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' की पूरी सामग्री का मूल आधार एक तो डार्विन का विकास सिद्धान्त है दूसरा

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग, पृष्ठ 7.

तत्वाद्वैतवाद तो फिर विश्व प्रपञ्च की भूमिका को भी इसी प्रकाश में देखने से स्पष्ट हो जाता है कि पूरी भूमिका भी इन्हीं दो वादों के सहारे खड़ी है और सच भी है आधुनिक विज्ञान जिसे हमें क्वाँटम भौतिकी के नाम से जानते हैं वह भी सिद्धान्तों के एकीकरण (***Unification of Theories***) या टी.ओ.ई. ***(TOE)*** या सबके लिए एक सिद्धान्त ***(Theory of Every Thing)*** की ही बात करता है। सामान्यरूप से यदि देखा जाय तो 'रज्जु– सिद्धान्त' ***(String Theory)*** जिसका प्रमुख प्रतिपादक सर स्टीफेन हॉकिंग ***(Sir Stephen Hawkings)*** नाम का ब्रिटिश वैज्ञानिक है भी इसी एकीकरण ***(Unification)*** की बात करता है। ध्यान देने की बात यह है कि इन सभी सिद्धान्तों जो कि अपेक्षाकृत नये हैं की आधार शिला महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन का वह परम प्रसिद्ध द्रव्यमान तुल्यता सम्बन्ध है जिसकी और संकेत आचार्य शुक्ल ने यह कहकर किया कि "द्रव्य और शक्ति का नित्य सम्बन्ध है"।

आइन्स्टीन के उस परम प्रसिद्ध तुल्यता सम्बन्ध का रूप कुछ इस प्रकार है।

$$\Delta E = \Delta m.c^2$$

जहाँ ΔE, शक्ति या ऊर्जा (जिसे शुक्लजी ने कहीं कहीं गति भी कहा है,) में परिवर्तन हैं।

Δm, मात्रा अथवा द्रव्यमान में अन्तर/परिवर्तन है तथा

C^2 प्रकाश के वेग (3.0×10^8 मी./से.) का वर्ग है। इस सम्बन्ध के अनुसार प्रत्येक द्रव्यमान एक निश्चित परिमाण की ऊर्जा में बदला जा सकता है किन्तु इसका उल्टा ***(Vice-Versa)*** संभव नहीं है। अर्थात् दव्य और शक्ति निश्चित रूप से किसी एक 'भावना' के दो पक्ष हैं। यह सम्भव इस प्रकार होता है कि द्रव्य के सूक्ष्म कणों 'अणुओं और परमाणुओं तथा अन्य मूलभूत घटकों ***(elementary/fundamental particles)*** का स्वरूप लुई डी ब्रॉग्ली के अनुसार ऊर्जामय ही होता है। वे सदैव अपने साथ एक विशेष प्रकार की तरंग ढोते रहते है। ब्रॉग्ली को इसी खोज के कारण 1929 ई. में भौतिकी का नोबेल भी

मिला था। किन्तु जब यह भूमिका (विश्व प्रपञ्च की) लिखी जा रही थी तब कदाचित् इस सिद्धान्त (डी ब्रॉग्ली के) का प्रकाशन, प्रचार–प्रसार उतना न हुआ होगा क्योंकि उस समय यह बिल्कुल नई अवधारणा थी। कदाचित इसी कारण से आचार्य शुक्ल ने अपनी भूमिका में सिद्धान्त को (द्रव्य और शक्ति के ऐक्य को) समझाने के लिए, आधार नहीं बनाया।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने जिन बातों का उल्लेख द्रव्य और शक्ति के नित्य सम्बन्ध को समझाने के लिए किया वे कुछ भिन्न प्रकार की हैं।

आचार्य शुक्ल ने प्रतिपालनीय ऊर्जा ***(sustainable energy/intrinsic energy)*** के सहारे अपनी बात को समझाने का प्रयास किया है जैसे रेडियोधर्मिता में प्रयोग होने वाली ऊर्जा का स्वरूप या कणों (परमाणुओं) और प्रतिकणों (प्रतिपरमाणुओं) की ऊर्जा का स्वरूप। कदाचित् इसी कारण उन्होंने ऊर्जा या शक्ति को गति का नाम भी दिया हो क्योंकि इस प्रतिपालनीय ऊर्जा के कारण ही पिण्ड या पिण्डकण गत्यावस्था में होते हैं।

किन्तु डी ब्रॉग्ली ने जिस ऊर्जा की बात की है उसे विज्ञान की भाषा में प्रतिस्थापनीय ऊर्जा या ***Convertible energy*** कहते हैं। यह ऊर्जा प्रतिपालनीय ऊर्जा से भिन्न है।

2. आकाश और ईथर सम्बन्धी अवधारणा

उन्नीसवी सदी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी का पूवार्द्ध कई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों के अलावा एक जिस महत्वपूर्ण खोज के लिए जाना जाता है वह है सापेक्षता का सिद्धान्त ***(Theory of Relativity)*** इस सिद्धान्त का प्रतिपादक आइन्स्टीन था। इस सिद्धान्त ने एक सिरे से तमाम वैज्ञानिक मान्यताओं की जड़ों को हिलाकर रख दिया।

ईथर की संकल्पना मूल रूप से इसी सिद्धान्त की उपज रही है। वैद्युत चुम्बकीय तरंगों के चलने के लिए एक 'माध्यम–शून्य माध्यम' या पदार्थ रहित

माध्यम' की संकल्पना सामने आई इसे ही ईथर कहा गया। माईकेल्सन–मोर्ले ने प्रकाश की गति के साथ एक बड़ा ही महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध प्रयोग करके ईथर के अस्तित्व को चुनौती दी थी। फिर आगे चलकर लार्ड केल्विन जैसे वैज्ञानिकों ने यह समझाने की कोशिश की कि इसी ईथर से सम्पूर्ण जगत द्रव्य निकसित और विकसित हुआ है।

"ईथर पकड़ में आने वाला द्रव्य नहीं है, यह एक अग्राह्य पदार्थ है। वैज्ञानिकों ने इसकी परीक्षा केवल प्रकाश के वाहक के रूप में की है। ..... केल्विन ने इसी ईथर को जगत् का उपादान ठहराया है; उन्होंने कहा कि समस्त ग्राह्य द्रव्यखण्ड इसी ईथर के भंवर मात्र हैं।"[1]

किन्तु आज हम सभी जानते हैं कि लार्ड केल्विन की इस बात में बहुत दम नहीं है क्योंकि इससे कहीं अधिक वैज्ञानिक सिद्धान्त जिसे अपस्फोटन का सिद्धान्त या महानाद का सिद्धान्त कहते हैं ***(Big Bang theory*** कहते हैं) ब्रह्माण्ड उत्पत्ति विषयक घटनाओं को अधिक कुशलता के साथ व्याख्यायित करता है जिसमें नीहारिकाओं से लेकर तारों, ग्रहों और नक्षत्रों की उत्पत्ति की व्याख्या सम्मिलित है। आचार्य शुक्ल ने भूमिका में इसी ('बिग–बैंग थिअरी') पर प्रकाश डाला है।

3. पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति और पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप और

4. प्राणियों का कायिक – विकास तथा विकास सिद्धान्त की पृष्ठभूमि

सुविधा की दृष्टि से जिसे तीसरा भाग कहा जा रहा है वस्तुतः यही सभी समस्याओं का मूल है। जीवन की उत्पत्ति और स्वयं पृथ्वी के अस्तित्व सम्बन्धी चिन्तन में भूगर्भ शास्त्रियों, जन्तु वैज्ञानिकों, धर्माचार्यों आदि में बहुत ही मौलिक भेद हैं। किंतु विडम्बना यह है कि इस विषय में अब तक कोई मौलिक चिन्तन

---

[1] विश्व प्रपञ्च, भूमिका भाग; पृष्ठ 9–10.

प्रकाश में नहीं आया है। चार कल्पों का वर्गीकरण और सजीव से निर्जीव तथा निर्जीव से सजीव सम्बन्धी उत्पत्ति के विवाद अभी तक चले आ रहे हैं।

"प्रथमकल्प में पुष्पहीन पौधे, जन्तुओं में स्पंज, मूंगे, शुक्तिवर्ग के कीड़े, कीट पतंग ..... चतुर्थकल्प में हाथी की तरह के पर उससे बहुत बड़े और रोएँदार मैमथ आदि जन्तु, मनुष्य तथा वे सब जीव जो आजकल पाये जाते हैं।"[1]

चौथा खण्ड (प्राणियों का कायिक–विकास तथा विकास सिद्धान्त की पृष्ठभूमि) भी कुछ नया प्रस्तुत नहीं करता है। लैमार्क ने जो भी कहा है, अब तक वही चला आ रहा है। लैमार्क ने अनुकूलन का सिद्धान्त दिया और कहा कि परिस्थितियों के प्रभाव से जीवन के स्वरूप बदलते रहते हैं। जैसे कि उस क्षेत्र में जहाँ कि, पेड़ों पर ऊँची–ऊँची डालें/शाखायें रही हैं वहाँ के शाकाहारी जन्तु उचक–उचककर या गर्दन को सप्रयास बहुत उठाकर खाते रहे। परिणाम यह हुआ कि वहां हजारों वर्षों की समयावधि बीत जाने के बाद जिराफ़ सदृश जन्तुओं का प्रादुर्भाव होने लगा। इसी प्रकार साँपों के बारे में भी कि, साँपों के पास पहले अवश्य ही अन्य सरीसृपों की भांति अग्र और पश्चपाद रहे होंगे किन्तु झाड़ियों में रेंगने या चलने के कारण और रात्रिचर होने के कारण उन्हें निर्बाध रूप से गमनागमन में असुविधाओं का सामना करना पड़ा होगा, साँप सदृश सरीसृपों के शरीर से ये पाद सदृश संरचनायें लुप्त होने लगीं और आज हम पादहीन रूप में साँपों को देखते हैं।

'पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति' और 'जीवन का विकास' ये दो ऐसे विषय रहे है जो आरम्भ से ही वैज्ञानिकों के लिए एक जटिल प्रश्न बनकर बार–बार सामने आते रहे हैं। किन्तु डार्विन से पूर्व इस प्रश्न का कोई संतोषजनक हल प्राप्त नहीं हो सका था। सच कहें तो डार्विन से पूर्व जैव विकास पर कम

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग पृष्ठ 14.

जैवोत्पत्ति पर अधिक बहस छिड़ी और अंत में यही निश्चित किया गया कि निर्जीव से ही सजीव की उत्पत्ति हुई होगी। 'मिलर' का परम प्रसिद्ध 'कोष्ठ–स्फुलिंग' ***(Chamber-spark)*** प्रयोग भी इसी की पुष्टि करता है और सिद्ध करने के क्रम में आगे मिलर ने कहा कि यदि किसी भी सजीव पिण्ड को नष्ट करो तो अन्ततोगत्वा निर्जीव घटक ही प्राप्त होंगे। यह सहज ही अनुमेय है किन्तु एक बड़ा भारी प्रश्न जो चिंता का कारण बना वह था प्राणतत्व का। प्राणतत्व का या संवेदना का। या कह लें चेतना का। चेतना का अनुष्ठान इस शरीर से कैसे हुआ होगा? या फिर प्राणतत्व मूलतः है क्या?

इस विवाद पर प्रकाश डालने के लिए आचार्य शुक्ल ने शरीर विज्ञान ***(Physiology)*** के प्रसिद्ध आचार्य एडिनबरा के अध्यापक शेफर का एक बहुत बड़ा उद्धरण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है–

"सजीव द्रव्य उत्पन्न कर देने की संभावना उतनी दूर नहीं है जितनी साधारणतः समझी जाती है। इच्छानुसार सजीव द्रव्य उत्पन्न किया जाने लगे तो भी आकार और व्यापार में परस्पर भिन्न जो इतने असंख्य प्रकार के जीव दिखाई पड़ते हैं विज्ञान के परीक्षालयों में उनके तैयार होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। यदि सजीव द्रव्य तैयार किया जा सकेगा, जिसमें मुझको कोई संदेह नहीं, तो वह द्रव्य के उबाले हुए अर्क से नहीं। चाहे आज तक काम में लाई गई युक्तियों और प्रमाणों पर हमें विश्वास न हो पर यह हमें मानना पड़ेगा कि निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य तैयार करने की सम्भावना है।"[1]

"यदि हम यह मान लेते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में केवल एक ही बार निर्जीव से सजीव का विकास हुआ तो प्राणतत्व संबंधिनी समस्याओं के अंतिम समाधान की कोई आशा नही रह जाती। पर क्या हमारा ऐसा मान लेना उचित है कि पृथ्वी पर केवल एक ही बार, वह भी न जाने किस शुभ संयोग से,

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग पृष्ठ 19.

निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य का विकास हुआ और प्राणतत्व की प्रतिष्ठा हुई? ऐसा मानने का कोई कारण न देख अंत में यही धारणा पक्की ठहरती है कि निर्जीव से सजीव का विकास एक ही बार नहीं कई बार हुआ है और कौन जाने अब तक भी हो रहा है।"[1]

5. डार्विन का विकास सिद्धान्त–विकासवाद

हैकेल के शब्दों में डार्विन के काम का परिचय इस प्रकार है–

"The unparalleled success of Charles Darwin is well Known. It shows him today, at the close of the century, to have been, if not the greatest, at least the most effective, of its distinguished scientists. No other of the many great thinkers of our time has achieved so magnificient, so thorough, and so far-reaching a success with a single classical work as Darwin did in 1859 with his famous Origin of Species"[2]

चार्ल्स डार्विन की अद्वितीय उपलब्धि जगजाहिर है। यह उपलब्धि इस बात का द्योतक है कि, इस सदी के अन्त तक के सभी गणमान्य वैज्ञानिकों में यदि वह (डार्विन) महानतम नहीं तो कम से कम सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति तो है ही। हमारे समय के कई महान चिन्तकों में से किसी को भी इतनी भव्य और कालातीत सफलता नहीं मिली जितनी डार्विन को उसके प्रसिद्ध ओरिजिन ऑव स्पिसीज़ (1859) से।

डार्विन और उसके काम के बारे में हैकेल के ये शब्द केवल प्रशंसा में कहे गये शब्द नहीं है बल्कि इससे भी अधिक डार्विन के चिन्तन और खोज के उस महत्व को, उजागर करने वाले शब्द हैं, जिसने धर्म और दर्शन से लेकर

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग पृष्ठ 19–20.

[2] द रिडिल ... ' पृष्ठ 28.

विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में फैली अनेकानेक मान्यताओं की जड़े हिलाकर रख दीं इतना ही नहीं डार्विन की इस उपलब्धि को जब हैकेल ***"far reaching"*** (फार रीचिंग) कह रहा है तब उसे पूरा विश्वास है कि डार्विन के जीवोत्पत्ति और जैव विकास संबंधी मान्यताओं की पैठ आने वाले समय में दर्शन और विज्ञान में इतने गहरे पहुंच जाएगी कि उसका विकल्प ढूँढना मुश्किल हो जायेगा। सच भी है आज लगभग डेढ़ सौ साल बाद भी डार्विन का विकास–सिद्धान्त उतना ही शक्तिशाली है जितना उन्नीसवीं सदी में था। इतनी अद्वितीय सफलता स्वयं न्यूटन को भी नहीं मिली थी। उसी के जीवन काल में सत्रहवीं सदी में उसे उसके सिद्धान्तों का विरोध सहना पड़ा था, विशेषकर 'हाइगेन' के 'द्वितीयक तरंगिका सिद्धान्त' के द्वारा। मैंने न्यूटन का नाम इसलिए लिया क्योंकि यदि उसके सभी सिद्धान्तों (विशेषकर प्रकाशिकी से संबंधित) की गहन परीक्षा करें तो यह जान पड़ता है कि वह विज्ञान में भाववाद को प्रतिष्ठित करना चाहता था। डार्विन, प्लॉक तथा आइन्स्टीन ने विज्ञान में भौतिकवादी दृष्टिकोण को वाद के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। ऐसा किस प्रकार हो सका यह हम दो हिस्सों में देखेंगे। एक तो अभी तत्काल यहां 'डार्विन' के 'विकासवाद' की चर्चा के अन्तर्गत, दूसरा इसी अध्याय के अन्त में प्लाँक के कण–भौतिकी की चर्चा के अन्तर्गत, जिसका कि ज़िक्र 'द रिडिल ...' में हैकेल ने भी किया है और विश्व प्रपञ्च की भूमिका के अंतिम पृष्ठों में शुक्ल जी ने भी।

'चार्ल्स डार्विन' (1809 ई.–1882 ई.) एक अंग्रेज प्राणितत्व वेत्ता व हैकेल (1834 ई.–1919 ई.) का समकालीन था। उन दिनों जैव, विकास सम्बन्धी प्रश्नों ने विज्ञान के समूचे विमर्श को चुनौती दे रखा था और उनके समाधान की दिशा में प्रयास हो रहे थे। डार्विन से पहले फ्रेंच वैज्ञानिक लैमार्क (1744 ई. –1829) इस दिशा में कुछ प्रयास कर चुका था। लैमार्क का प्रमुख सिद्धान्त था – 'सतत् संघर्ष का सिद्धान्त' ***(Theory of perseverence)***। इस सिद्धान्त ने

ही डार्विन को उसके 'प्राकृतिक वरण *(Natural selection)* और 'योग्यतम उत्तरजीविता *(survival of the fittest)* के सिद्धान्त के लिए प्रेरित किया। ऐल्फ्रेड रसेल वैलास *(Alfred Russel wallace)* नाम का एक और अग्रेंज प्राणितत्ववेत्ता था जिसने डार्विन के साथ मिलकर जैव विकास संबंधी सिद्धान्तों की नींव डाली। डार्विन की 'ओरिजिन ऑफ स्पिसीज़' छपने से पहले 1858 में वैलास और डार्विन ने लन्दन की लिनियन सोसाइटी *(Linnean Society)* में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। यह सोसाइटी आधुनिक विज्ञान *(modern Science)* को आगे बढ़ाने वाली एक प्रमुख संस्था थी, जो बाद में 'साइन्टिफिक सोसाइटी ऑफ़ लन्दन' *(Sienetitfic Society of London)* के नाम से जानी जाने लगी।

रसेल् व डार्विन का सिद्धान्त दो हिस्सों में बँटा है–

"First, more organisms are born than can survive to reproduce themselves, because the environment has limited means of subsistence. This over production results in a struggle for existence and ultimate survival of the fittest x x x. The second observation is that off-springs, i.e. children differ slightly from their parents and from each other in characteristics which they inherit. This we now call genetic variation."[1]

पहली बात तो यह कि जितने जीव जीवित रहते हैं उससे कहीं ज्यादा संख्या में वे उत्पन्न होते हैं क्योंकि पर्यावरण (प्रकृति) के पास जीवन को सहारा देने वाले संसाधन सीमित हैं। यह जो अधिक जीवोत्पादन है वह अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष का कारण बनता है जिसका परिणाम 'योग्यतम की उत्तरजीविता' के रूप में सामने आता है। दूसरी बात यह है कि, संततियाँ अपने

---

[1] ***Universe and Life : the Beginings FST-1 IGNOU Page. 70***

माता–पिता से और स्वयं आपस में भी एक दूसरे से कुछ भिन्न होती हैं। इसे ही 'आनुवांशिक भिन्नता' के रूप में जाना जाता है।

यहाँ केवल सूचना के लिए इतना बता देना पर्याप्त होगा कि उपरोक्त सिद्धान्त में जो 'आनुवांशिक–भिन्नता' की बात है उस पर 'डार्विन' और 'हैकेल' के ही समकालीन आस्ट्रियॉ के प्रमुख वनस्पतिशास्त्री 'ग्रेगर जॉन मेंडल' (1822–1884) अलग से काम कर रहे थे। आज मेंडल को 'आनुवांशिकी का पिता' ***(Father of Genetics)*** कहा जाता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि डार्विन के विकास सिद्धान्त के तीन प्रमुख घटक हैं–

1. अस्तित्व के लिए संघर्ष
2. योग्यतम की उत्तर जीविता
3. आनुवांशिक भिन्नता

पहले दो घटक क्रमशः (1) और (2) को संयुक्त रूप से डार्विन का प्राकृतिक वरण ***(Natural selection)*** का सिद्धान्त कहा जाता है और यही प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त डार्विन के विकासवाद का मूलाधार है।

यहाँ पुनः केवल सूचना के लिए बता देना पर्याप्त होगा कि जिसे हम डार्विन का प्राकृतिक चयन/वरण (***Natural selection***) का सिद्धान्त कहते है, जिसके अनुसार–प्रकृति अपने सीमित संसाधनों के कारण स्वयं अपनी रक्षा और उस पर निर्भर रहने वाले प्राणिजगत् के समुचित पोषण और विकास के लिए, अपने विलक्षण तरीके से, बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेती है, वस्तुतः मौलिक रूप से अंग्रेज अर्थशास्त्री थॉमस राबर्ट माल्थस (1766–1834) का ही योगदान है जिसे उसने 1798 में अपनी पुस्तक ***"Essay on the Principle of***

Population"[1] (एसे ऑन द प्रिंसिपुल ऑफ पॉपुलेशन) में प्रकट किया था। "एसे ऑन द प्रिसिंपुल ऑव पॉपुलेशन', 'ओरिजिन ऑव स्पिसीज़' का प्रेरणा स्रोत था– यह कहना अतिश्योक्ति न होगी।

"His Essay on the Principle of Population ... influenced Charles Darwin's thinking on natural selection as the driving force of evolution."[2]

इस प्रकार डार्विन का विकास सिद्धान्त सामूहिक रूप से माल्थस और मेंडल के सिद्धान्तों का अनुप्रयोगात्मक रूप है। डार्विन का महत्व इस बात में हैं कि पहली बार उसने इन सिद्धान्तों को समेट कर मनुष्य की उत्पत्ति और विकास को वैज्ञानिक तरीके से समझने–समझाने का काम किया। 1863 ई. में उसकी दूसरी पुस्तक "डिसेन्ट ऑव मैन" ***(Descent of man)*** छपकर आई जिसमें उसने इन सभी पक्षों की सविस्तार चर्चा करते हुए बाइबिल की उस धारणा का खंडन किया जिसमें पूरी सृष्टि की रचना केवल छः दिनों में होने की बात कही जाती है। चर्च ने डार्विन को इस 'गुस्ताखी' के लिए षडयंत्र कर नींद की गोलियाँ दिलवाकर मरवा दिया था। आज डार्विन के इस विकासवाद के लिए अनेक वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं। अभी यहाँ उन सबकी चर्चा करना संभव नहीं है।

अस्तित्व के लिए संघर्ष, योग्यतम की उत्तरजीविता तथा आनुवांशिक भिन्नता, इन तीन घटकों की चर्चा अभी ऊपर डार्विन के विकास सिद्धान्त के रूप में की गई और यह भी कहा गया कि अस्तित्व के लिए संघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता को संयुक्त रूप से प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त कहा जाता है।

---

[1] The words worth Encyclopaedia 1995, volume 3 Page 1355

2. वही; पृष्ठ 1355.

आचार्य शुक्ल ने आनुवांशिक भिन्नता को 'जात्यंतरपरिणाम' के रूप में देखा है और प्राकृतिक वरण को जात्यंतर परिणाम का सहयोगी कारक बतलाया है।

"जिस जात्यंतरपरिणाम को एक व्यक्ति में तीव्र परिणाम के रूप में पतंजलि ने अपने योगदर्शन में प्रकृति की पूर्णता से संभव बतलाया था उसी को डारविन ने मृदु परिणाम के रूप में वंश–परम्परा के बीच प्रकृति का एक नियम सिद्ध किया x x x यह जात्यन्तर परिणाम होता किस प्रकार है? "वंश परम्परा" और 'प्राकृतिक ग्रहण' के नियमानुसार।"[1]

विश्व प्रपंच की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने डार्विन के विकासवाद पर खूब खुलकर लिखा है साथ ही वे अनेकानेक उदाहरणों– कभी विज्ञान से, कभी भारतीय दर्शन से, तो कभी जीवन के सामान्य अनुभवों से विकासवाद के पक्ष को एक ओर जहाँ मजबूत करते दिखाई देते हैं वही दूसरी ओर डार्विन के विकासवाद को हिन्दी के पाठकों के लिए सहज ग्राह्य और बोधगम्य बनाते चलते हैं।

आचार्य शुक्ल ने डार्विन के विकासवाद में आनुवांशिक भिन्नता (जात्यंतर परिणाम) को परिस्थिति जन्य बतलाया है। यह एक महत्वपूर्ण बात है। ये परिस्थितियाँ नितान्त ही भौतिक किस्म की और ज्ञेय तथा विश्लेष्य होती हैं। इस बात को आचार्य शुक्ल ने समझाने के लिए भौतिक पदार्थों की अवस्थाओं, में ताप, दाब, आयतन आदि परिस्थितियों में 'फेरफार' के कारण होने वाले परिवर्तन सम्बन्धी उदाहरण का सहारा लिया है। इस प्रकार जीवन के समस्त क्रिया व्यापार यहां तक कि उद्‌भव और विकास किस प्रकार इस भूत जगत के नियमों के साथ आपस में अदला–बदली करते हैं, आचार्य शुक्ल के विवेचन से यह बात साफ हो जाती है। इसी के साथ दो बातें और साफ होती हैं। पहली तो यह कि,

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग; पृष्ठ 16.

शुक्ल जी ने भौतिक जगत में परमाणुओं की गति को जीवन में स्पन्दन के साथ मिलाकर देखने का आग्रह करते हुए अपनी अनाध्यात्मवादी दृष्टि को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है और दूसरी बात यह कि जीवन अर्थात् चेतना अर्थात् विचार किस प्रकार जड़ पदार्थों में और पुनः जड़ पदार्थों की किस प्रकार जैविक शक्तियों में अदला–बदली संभव हो सकती है–इस भौतिकवादी अवधारणा पर अपनी सहमति दी है। न सिर्फ सहमति दी है बल्कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के इस मूल प्रस्ताव के पक्ष में हक्सले और शेफ़र के सहारे एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठाया है–

"चाहे आज तक काम में लाई गई युक्तियों और प्रमाणों पर हमें विश्वास न हो पर यह हमें मानना पड़ेगा कि निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य तैय्यार करने की संभावना है।" x x x 'यदि हम यह मान लेते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में केवल एक ही बार निर्जीव से सजीव का विकास हुआ . . . पर क्या हमें ऐसा मान लेना उचित है ... ऐसा मानने का कोई कारण न देख अंत में यही धारणा पक्की ठहरती है कि निर्जीव से सजीव का विकास एक ही बार नहीं कई बार हुआ है और कौन जाने अब भी हो रहा हो।"[2]

"यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रमुख सिद्धान्त है जो अजीव से जीव और अचेतन से चेतन का विकास समझने में सहायता करता है।"[3]

खण्ड 5 के अन्तर्गत यह तो चर्चा हुई डार्विन के विकासवाद की, किन्तु ऐसा नहीं कि शुक्ल जी ने तटस्थ होकर डार्विन के विकासवाद को हिन्दी जन समुदाय के ज्ञान–श्री में वृद्धि के लिए केवल उद्धृत मात्र कर दिया हो बल्कि

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग; पृष्ठ 19.

[2] वही; पृष्ठ 20.

[3] रामविलास शर्मा–'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना', राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति सन् 2000, पृष्ठ 21.

विकासवाद की खूबियों और खामियों की विधिवत् समीक्षा भी की है। विकासवाद चूँकि एक वैज्ञानिक अवधारणा है इसलिए इसमें भी लगातार मार्जन–परिमार्जन की संभावनायें गर्भस्थ हैं। ऐसा नहीं कि डार्विन का विकासवाद जीवन की उत्पत्ति, विकास और समस्त क्रिया–व्यापारों के प्रसंग में पूर्ण, अंतिम और शाश्वत है। वस्तुतः कोई भी वैज्ञानिक अवधारणा कभी भी 'विकास परम सत्य'[1] है का अपवाद हो ही नहीं सकता, चाहे वह स्वयं विकासवाद ही क्यों ना हो। शुक्ल जी ने विकासवाद की सीमाओं को रेखांकित करते हुए विकासवाद की वैज्ञानिकता के पक्ष में एक बहुत ही महत्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है। यह विवेचना क्या है? इसका विस्तृत विवरण भूमिका भाग में मनोविज्ञान और दर्शन सम्बन्धी गूढ़ प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने के प्रयास में, शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। यहां हम केवल अपनी बात पूरी करने के लिए इस विवेचन की संक्षिप्त चर्चा पर्याप्त समझते हैं जिसे संयुक्त रूप से अगले खण्ड (6), (7), (8) तथा (9) के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

6/7/8/9 मनोविज्ञान एवं दर्शन

'द रिडिल ...' में हैकेल ने डार्विन के विकासवाद के प्रति कुछ अधिक ही उत्साह दिखाते हुए दृश्य जगत के उद्भव और विकास की व्याख्या के साथ–साथ अदृश्य जगत की अवधारणाओं– चेतना, आत्मा, मनोविकार, सौंदर्यबोध आदि के उद्भव और विकास सम्बन्धी अपेक्षाकृत जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है। उत्साह से भरा यह प्रयास अनेक संभावनाओं से भरा तो हुआ है लेकिन विकासवाद के प्रति अतिरिक्त आग्रह के कारण हैकेल उसकी सीमाओं को पहचानने में चूक गया है। पता नहीं चूक गया है या कि तत्कालीन योरप में चल रही मनोविज्ञान विषयक बहसों

---

[1] 'विश्व प्रपञ्च' भूमिका भाग; पृष्ठ 87– 'विकास परम सत्य है, बड़े महत्व का सिद्धान्त है'।

(जिसका जिक्र शुक्ल जी ने भूमिका में बड़े ही व्यवस्थित ढंग से किया है, और अभी आगे यहां जिसे उद्धृत भी किया जायेगा) में उठे आक्रामक प्रश्नों से विकासवाद के सिद्धान्त को बचाने के लिए जान–बूझकर (सीमाओं को) प्रकट नहीं करता है। ऐसे विषय (मनोविज्ञान, चेतना, आत्मा, संवेदना आदि से सम्बन्धित) सच कहें तो आज भी वैज्ञानिकों से अधिक दार्शनिकों की रूचि के क्षेत्र हैं और चूँकि हैकेल, मूल रूप से, विज्ञान और दर्शन में भेद मानने को न सिर्फ दुर्भाग्यपूर्ण मानता है बल्कि ज्ञान की पद्धति के विकास के लिए घातक भी मानता है, इस कारण वह विकासवाद जैसी वैज्ञानिक अवधारणा का, दर्शन के क्षेत्र में, अतिक्रमण रोक न सका। वह कहता है–

"Unnatural and fatal opposition between Science and philosophy ...., is undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[1]

आचार्य शुक्ल दर्शन और विज्ञान के इस भेद को विरोधी नहीं मानते बल्कि इस भेद को ही दर्शन और विज्ञान दोनों की, जीवनी शक्ति मानते हैं। दर्शन और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे से निश्चित रूप से भिन्न हैं। इसी कारण शुक्ल जी विकासवाद की सीमाओं को पहचानने में सफल हो जाते हैं। इस विशेष अर्थ में विश्व प्रपञ्च की भूमिका केवल 'द रिडिल ... ' को समझाने के लिये लिखी गई भूमिका न रहकर, कहना चाहें तो 'द रिडिल...' के ही वजन की जीवन–जगत (दृश्य/अदृश्य) सम्बन्धी समस्याओं पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकने वाली एक सर्वथा भिन्न, विशेष और महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें हैकेल[a], 'डार्विन[b], प्लॉक[c], ह्यूम[d], स्पेंसर[e], बेटसन[f], कॉट[g], शोपेनहावर[h], शेलिंग[i], हेगेल[j], फिक्ट[k], ड्यूरिंग[l], ओलिवर लाज[m], जोसेफ मेक्कैब[n], कानन

---

[1] The Riddle ...' Author's preface , Page xv

डायल[0,1] आदि से लेकर वेदांत, उपनिषद्, भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, विज्ञान आदि पर बहुत ही विचारोत्तेजेक और सूचनाप्रद तथा समीक्षात्मक विश्लेषण, व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

"भौतिकवादी और भाववादी दर्शन की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने विकासवाद की सीमाएँ बतलाई हैं। उनका यह कहना सही है कि आधुनिक विज्ञान अभी चेतना के उद्‌भव की पूरी व्याख्या नहीं कर पाया है।"[2]

आचार्य शुक्ल ने विकासवाद की सीमाओं को पाठक के सामने और स्पष्ट करते हुए जोसेफ मैक्केब और इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कहानीकार ए.कानन डायल के बीच परलोक आदि पर बहस का ज़िक्र भूमिका के पृष्ठ 88–89 पर किया है "अभी हाल में एक ... शास्त्रार्थ हुआ है जो पुस्तकाकार छपा है।" इसके अतिरिक्त विकासवाद की सीमांकन के सन्दर्भ में ही आचार्य शुक्ल ने 'दोहरी चेतना' का उदाहरण दिखाते हुए भूमिका के पृष्ठ 51 पर फेलिडा नामक एक लड़की के विलक्षण मनोरोग की भी चर्चा की है।

मनोविज्ञान और दर्शन को समर्पित भूमिकांश में आचार्य शुक्ल विकासवाद की सीमाओं को गहरे रेखांकित करने के लिए दर्शन तथा विज्ञान से एक–एक आधारभूत प्रश्न उठाकर अपना निष्कर्ष कुछ इस प्रकार देते हैं।

---

[1] .a तथा b के बारे में तो पूरी भूमिका में कहीं न कहीं कुछ न कुछ मिलता रहता है। शेष, विश्व प्रपंच की भूमिका में क्रमशः (c,d,e,f,g,h,i,j,k,l,m,,n,o,p) पृष्ठ–84, 50, 64, 61, 72, 78,78,78, 77, 80, 88, 88, 89.

[2] रामविलास शर्मा–'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना', राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति सन् 2000, पृष्ठ 23.

"विकासवाद जगत की समस्याओं के संबंध में हमारा कहां तक समाधारन करता है, चलती नज़र से यह भी देख लेना चाहिए। जगत के संबंध में दो प्रकार की जिज्ञासा हो सकती है–

1. यह जगत क्या है? अर्थात् इसकी मूल सत्ता किस प्रकार की है ?

2 जगत् के नाना व्यापार किस प्रकार घटित होते हैं? उस गति का विधान कैसा है, जिसके अनुसार जगत के नाना पदार्थ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हो सके हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि विकास सिद्धान्त का संबंध असल में दूसरे प्रश्न से है। **x x x** सत्ता की मीमांसा विकास का विषय नहीं है। पर दार्शनिक प्रवृत्ति रखने वाले हैकेल ऐसे विकासवादी नाना व्यापारों को सत्ता का लक्षण मान उसके अनुमान में भी प्रवृत्त होते हैं।"[1]

विकासवाद की सीमाओं की ओर संकेत करने के बाद आचार्य शुक्ल इन सीमाओं के मूल में आधुनिक विज्ञान के पिछड़ेपन की बात पर दुःख व्यक्त हुए है (उस समय तक नई) प्रो. प्लाँक की क्वाँटम भौतिकी से कुछ उम्मीद करते हुए प्रतीत होते हैं कि, कदाचित् 'प्लाँक की क्वाँटम भौतिकी' विकासवाद की सहायता के लिए आगे आकर बदलते वैज्ञानिक परिवेश में उसकी अद्यतन व्याख्या कर सकने में सक्षम हो सके तथा पाठकों को आश्वस्त करते हैं कि–

"इतने पर भी यह निश्चय है कि अखण्डत्व ही विकास सिद्धान्त का मूल है।"[2] ध्यातव्य है कि यह अखण्डत्व का सिद्धान्त ही प्लाँक का क्वाँटम सिद्धान्त है। आगे खण्ड (10) के रूप में इस सिद्धान्त की संक्षिप्त चर्चा तथा किस प्रकार

---

[1] विश्व प्रपञ्च भूमिका भाग पृष्ठ 62.

[2] वही; पृष्ठ 84

विश्व प्रपंच की भूमिका तथा 'द रिडिल ...' इस सिद्धान्त की चर्चा के साथ चरम को पहुंचते हैं, की बात होगी।

10. प्लाँक की कण भौतिकी (क्वाँटम भौतिकी) विकासवाद और एकेश्वरवाद

यद्यपि हैकेल महोदय दर्शन और विज्ञान में भेद करना ज्ञान की पद्धति के सही विकास के लिए घातक मानते हैं।

"The unnatural and fatal opposition between Science and Philosophy, between the results of experience and of thought, is undoubtedly becoming more and more painful to thoughtful people."[1]

तथा के दर्शन और विज्ञान एक सीमा तक तो एक दूसरे से भि े बजाय कि दर्शन और विज्ञान में भेद करना अस्वाभाविक और घातक, है, मेरी दृष्टि में, यदि यह कहा जाय कि दर्शन और विज्ञान में पूरकता का सम्बन्ध है, अन्तनिर्भरता का सम्बन्ध है तो कहीं अधिक उचित होगा और आज जबकि विज्ञान के विकास की गति ज्ञान की अन्य शाखाओं के विकास की गति से कहीं अधिक दीख पड़ती है तब ऐसी स्थिति में दर्शन और विज्ञान की पूरकता या एक प्रकार से विज्ञान की दर्शन पर निर्भरता बढ़ती ही जा रही है– 'क्वाँटम–भौतिकी' और 'क्वाँटम– क्षेत्र–सिद्धान्त' ***(Quantum Physics & Quantum Field Theory)*** इसका सबसे प्रबल उदाहरण है।

आज के समय का सर्वोन्नत विज्ञान क्वाँटम भौतिकी अथवा क्वाँटम रसायन ही है। क्वाँटम भौतिकी की उम्र लगभग सौ साल की हो चुकी है।

---

[1] The Riddle ...' Author's preface , Page xv

क्वाँटम भौतिकी आज के समय की सभी वैज्ञानिक गतिविधियों (अद्यतन नैनोकण भौतिकी, ***Nano Particle Physics)*** सिद्धान्त गुच्छ है। क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापनाओं और हैकेल 'की' द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' की मूल प्रस्थापना में सच कहें तो कोई मौलिक अन्तर नहीं हैं। अन्तर केवल इतना है कि क्वाँटम भौतिकी को आर्चायों ***(Physicists)*** ने जगत के उदभव और विकास के अध्ययन के बजाय पदार्थ और उसकी क्रियाविधियों के उद्भव–विकास–प्रभाव–कारण और परिणामों को समझने में लगाया, जिसमें आइन्स्टीन, प्लाँक, डी ब्रोगली, हाइसेनबर्ग, स्रोडिंगर, हैमिलटन, लाप्लास प्रमुख हैं जबकि हैकेल ने इसी सिद्धान्त की मूल मान्यता तत्वाद्वैतवाद के सिद्धानों को जगत के स्थूल रहस्यों को समझने में में लगाया।

यह अकारण या केवल संयोग ही नहीं कि 'क्वाँटम'का विकास और हैकेल की व्याख्या दोनों अलग–अलग क्षेत्रों में एक साथ चल रही थीं।

क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापना कुछ इस प्रकार है–द्रव्य और उसकी गति में कोई मूल अन्तर नहीं है। वस्तुतः दो भिन्न अवस्थाओं के प्रतिनिधि ही हैं– द्रव्य और गति। ये अवस्थाएं एक साथ एक दूसरे पर निर्भर भी रह सकती हैं और एक दूसरे से स्वतन्त्र भी।

क्वाँटम भौतिकी की इस मूल प्रस्थापना में दर्शन के तत्वाद्वैतवाद का तत्व समाया हुआ है। यहाँ यह उल्लेख करना सर्वथा उपयुक्त होगा कि क्वाँटम भौतिकी को सैद्धान्तिक रूप से बल दर्शन के इसी सिद्धान्त से मिला है। काल–क्रम की दृष्टि से यह दार्शनिक मत विज्ञान की इस नई शाखा से बहुत पुराना है। यह सच है कि विज्ञान ने इस मत का प्रयोग करके जगत और उससे जुड़ी भ्रान्तियों का जिस प्रकार निराकरण किया है, दर्शन उस प्रकार से सफल ना हो सका। दर्शन और विज्ञान के प्रभाव में निश्चित रूप से मौलिक भेद है। जहाँ एक और दर्शन अपनी अमूर्तता और जटिलता के कारण नाना प्रकार के विवादों को अनायास ही आमंत्रित करता है वहीं विज्ञान अधिक मूर्त और सहज

एवं सरल होने के कारण निर्णायक भूमिका निभाकर जगत के रहस्यों का उद्घाटन कर सकने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होता है।

क्वाँटम भौतिकी की मूल प्रस्थापना के दो भाग हैं, पहला भाग, जहाँ पर एक ओर पदार्थ और उसकी गति (अवस्था/ऊर्जा) की अद्वैतता को रेखांकित करता है वहीं दूसरी ओर दूसरा भाग इस अद्वैतता को रेखांकित करता है वहीं दूसरी ओर दूसरा भाग इस अद्वैतता की तात्कालिक ***(instantaneous)*** निश्चितता के प्रति संदेह व्यक्त करता है।

दोंनो भागों का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है।

पहला भाग

पहले भाग का मूल प्रतिपादक डी ब्रॉग्ली ***(De'Broglie)*** रहा है। डी ब्रॉग्ली एक फ्रेंच वैज्ञानिक था जिसे उसके क्वाँटम भौतिकी सम्बन्धी महत्वपूर्ण खोज के लिए 1929 में नोबेल से नवाजा गया था। हालाँकी डी ब्रॉग्ली से पहले प्लाँक, फ्रैंक–हर्ज, आइन्स्टीन स्टर्न–गेरलाक और कौम्टपन ने कण भौतिकी का मूल खाका तैय्यार कर दिया था। डी ब्राग्ली की खोज, वस्तुतः पदार्थ और ऊर्जा के अद्वैत पर प्रकाश डालती है। उसके अनुसार जब कोई पदार्थ गतिशील अवस्था में होता है जब वह अपने पीछे एक तरंग को अथवा कई तरंगो के समूह को छोडता चलता है। अर्थात् ऊर्जा कुछ नही बल्कि पदार्थ की एक निश्चित अवस्था का प्रतिरूपण मात्र है। यह सिद्धान्त 1924 ई. में ब्रॉग्ली ने *इन्वेस्टिगेशन्स ऑन

---

* घटक–लोकनाथन–'क्वाँटम मैकेनिक्स थियरी एण्ड एप्लीकेशन्स', मैकमिलन इंडिया लि. सन् 2001, पृष्ठ xiii अथवा देखें

'संधान' पत्रिका' (संपादक–सुभाषगताड़े और लाल बहादुर वर्मा) अंक 2, 3 तथा 4 सन् 2001 में रवि सिन्हा के लेख, 'क्वाँन्टम क्रांति के विलम्बित प्रहर में', आदि।

क्वाँटम थियरी ***(Investigations on Quantum theory)*** नाम के अपने शोधपत्र में प्रस्तुत किया।

दूसरा भाग

दूसरे भाग का सम्बन्ध हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता के सिद्धान्त से है। इस सिद्धान्त के अनुसार घटना/परिघटना के संभावन और मापन में एक निश्चित मात्रा के समय, ऊर्जा आदि का क्षय होने के कारण मापन की निश्चितता संदग्धि हो जाती है। या कह लें 'कि वैज्ञानिक घटनाओं /परिघटनाओं (के संभावन और मापन) में द्वैत की अवस्था त्रुटिरहित हो ही नहीं सकती।

हैकेल विकासवाद के साथ इस सिद्धान्त को मिलाकर अद्वैतवाद अथवा एकेश्वरवाद की अपनी प्रस्थापना को मूर्तरूप इस दसवें खण्ड में देता है। मूल पुस्तक में अध्याय 18 से अध्याय 20, इसी विवेचना को समर्पित है।

विश्व प्रपञ्च में आचार्य शुक्ल क्वाँटम सिद्धान्त का समर्थन करते हुए लिखते हैं। कि–

"प्रो. प्लाँक का शक्त्याणु (क्वाँटम) वाद अत्यन्त चित्ताकर्षक, कुछ लोगों की समझ में अत्यन्त प्रबल भी है। ज्योतिः प्रवाह के अणुमय सिद्ध होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं.... पर ज्योति प्रवाह संबंधी जो विवाद है वह है बड़े महत्व का, क्योंकि वह ईथर और द्रव्य के बीच की सबसे अधिक ज्ञात और परीक्षित श्रृंखला है।"[1]

ठीक ही लिखा है आचार्य शुक्ल ने। आचार्य शुक्ल की विज्ञान के प्रति ऐसी समझ निश्चय ही अद्‌भुत है। वे आगे लिखते हैं–

---

[1] विश्व प्रपञ्च; भूमिका; पृष्ठ 84.

"कहने की आवश्यकता नहीं कि अखंडत्व का निर्धारण नाना विशेषों के भीतर एक निर्विशेष का निर्धारण है जिसके द्वारा सत्ता का आभास मिल सकता है।"[2]

यह धारणा क्वाँटम भौतिकी का दार्शनिक पक्ष है, जो, हैकेल के मोनिज़्म का रूप पाकर, 'द रिडिल....' और 'विश्व प्रपञ्च' की भूमिका के चरमोत्कर्ष के रूप में मूर्त होता है।

पुस्तक के पाठ ***(Text/content)*** से भिन्न एवं स्वतंत्र भूमिका की कल्पना नहीं की जा सकती है। किसी पुस्तक की भूमिका का उस पुस्तक के मूल पााठ और मूलपाठ के संघटक अवयवों से सीधा, गहरा और अनिवार्य संबंध होता है। इस अर्थ में 'विश्व प्रपञ्च की भूमिका एक प्रकार से विश्व प्रपंच अथवा 'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स' के मूल कथ्य को समझाने के लिए लिखा गया 'मिनीविश्व प्रपञ्च' है।

<u>स्वयं आचार्य शुक्ल के शब्दों में–</u>

"पुस्तक में आधुनिक दर्शन और विज्ञान से संबंध रखनेवाली जिन–जिन बातों का उल्लेख है उन सबकी थोड़ी बहुत चर्चा भूमिका में इसलिए कर दी गई है जिसमें अभिप्राय समझने में सुविधा हो।"[1]

<u>'हिन्दी' के पाठकों के लिए यह भूमिका तीन कारणों से महत्वपूर्ण है–</u>

पहला तो यह कि, जितनी सामग्री इस भूमिका मात्र में उपलब्ध है, विशेषकर विज्ञान के संदर्भ में, वह आश्चर्यजनक रूप से कई एक विज्ञान ग्रन्थों के सार–संक्षेप पर भारी पड़ेगी। एक साथ इतनी सामग्री एकत्रित करने के लिए

---

[2] वही; पृष्ठ 84.

[1] विश्व प्रपञ्च– 'प्रथम संस्करण का वक्तव्य'

हिन्दी के पाठकों को कई अंग्रेजी ग्रंथों से होकर गुजरना पड़ेगा जो अत्यन्त ही दूरूह कार्य है। इस दुरूहता के दो कारण हैं, एक तो भाषा की समस्या दूसरा कथ्य की समस्या। भाषा की समस्या तो एक बार दूर की भी की जा सकती है किन्तु कथ्य की समस्या दूर करना आसान कार्य नहीं है क्योंकि इसके लिए विज्ञान की न सिर्फ प्रारम्भिक जानकारी का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है बल्कि विज्ञान की अद्यतन शाखाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। आचार्य शुक्ल ने इस कठिनाई को हिन्दी के पाठकों के लिए बड़ी ही कुशलता के साथ दूर करने का सफल प्रयास किया है। सरल शब्दों में विज्ञान के मूल सिद्धान्तों को एक–दूसरे के साथ तुलनीय बनाते हुए आलोचनात्मक और सूचनापरक टिप्पणी की है, शुक्लजी ने।

विज्ञान का तनिक मात्र भी ज्ञान न रखने वाले हिन्दी पाठक इस भूमिका को पढ़कर स्वयं को इस स्थिति में पा सकते हैं कि वे अद्यतन विज्ञान यथा डार्विन के विकासवाद और प्लाँक के क्वाँटम सिद्धान्त की सामान्य समझ विकसित कर सकें।

दूसरा कारण यह कि, प्रायः ऐसा देखा गया है कि दर्शनशास्त्र की व्याख्या स्वतन्त्र रूप से की जाती है। जगत की समस्याओं का समाधान दर्शशास्त्र स्वतंत्र रूप से अपनी मान्यताओं की सीमा के भीतर करता है। इसी प्रकार विज्ञान भी जगत की उत्पत्ति विषय धारणाओं आदि के सम्बन्ध में अपने उद्‌गार दर्शनशास्त्र से स्वतंत्र होकर देने का प्रयत्न करता है और परिणाम यह होता है कि एक सामान्य जिज्ञासु जो ना ही दर्शनशास्त्र का विधिवत् विद्यार्थी है और ना ही विज्ञान का उसके लिए दोनों (दर्शनशास्त्र की जगत विषयक व्याख्या और विज्ञान की जगत विषयक व्याख्या) में तालमेल बैठा पाना बड़ा ही कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में विश्व प्रपञ्च की यह भूमिका अद्वितीय रूप से उपयोगी है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि पहले और दूसरे कारणों के रूप में भूमिका का महत्व हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों/पाठकों को सहज और सरल तर्कों द्वारा विज्ञान की अधुनातन शाखाओं के मलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराना तथा हिन्दी साहित्य के ज्ञानकोश को ऐसी महत्वपूर्ण सामग्रियों से समृद्ध करना था।

किन्तु केवल इतना ही उद्देश्य नहीं था और एक दूरदर्शी तथा सचेत साहित्य–निर्माता से हम केवल इतनी ही अपेक्षा भी नहीं कर सकते। विश्व प्रपञ्च की भूमिका और विश्व प्रपञ्च के रूप में 'द रिडिल...' जैसे धार्मिक कट्टरता, अवैज्ञानिकता और मतान्धता के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वाले ग्रन्थ के अनुवाद का चयन और इस चयन के पीछे आचार्य शुक्ल की सूझ–बूझ आज लगभग 85 वर्ष बाद भी हमारे अपने भारतीय समाज में एक विशेष महत्व रखती हैं।

आचार्य शुक्ल द्वारा प्रणीत विश्व प्रपञ्च (की भूमिका) के महत्व के बारे में प्रो. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि–

"x x x ऐसी स्थिति में रामचन्द्र शुक्ल ने जर्मन वैज्ञानिक और दार्शनिक अर्न्स्ट हैकेल की अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक "द रिडिल ऑव द यूनिवर्स" का 'विश्व प्रपंच' नाम से जो अनुवाद किया था उसे याद करना और पढ़ना विशेष रूप से आवश्यक लगता है, क्योंकि हैकल ने डार्विन के विकासवाद की मदद से धार्मिक पाखण्ड, रूढ़िवाद और आतंकवाद का ज़ोरदार खण्डन किया हैं।"[1]

---

[1] 'नया मानदण्ड'; अंक 31 (जनवरी–मार्च 2004), पृष्ठ 29.

"आचार्य शुक्ल द्वारा हैकेल की पुस्तक के अनुवाद का निर्णय एक साहसी निर्णय था, अनेक प्रकार के खतरों से भरा हुआ था; क्योंकि भारत में धर्म का मकड़जाल कम मजबूत और फैला हुआ न था।"[1]

ज़ाहिर है कि विश्व प्रपञ्च की भूमिका और विश्व प्रपञ्च के अनुवाद के संदर्भ में आचार्य शुक्ल की दृष्टि का आज सामाजिक महत्व कल से कुछ बढ़ ही गया है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि आज हिन्दी साहित्य में ऐसे विषयों पर लिखे जाने वाले लेखों में कोरी बयानबाज़ी और राजनीतिक नारेबाजी के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया है। विषय के वैज्ञानिक विवेचन और सैद्धान्तिक विश्लेषण की परम्परा, सामाजिक महत्व के विशेषकर ऐसे जटिल विषयों पर, हिन्दी साहित्य से लगभग जा चुकी है। अव्वल तो ऐसे विषयों पर अब हिन्दी वाले लिखने–पढ़ने की कदाचित आवश्यकता ही महसूस नहीं करते। यही कारण है कि विश्व प्रपंच को पाठकों के हाथ में आए हुए आठ दशक से भी ऊपर हो गये, तब से हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का विज्ञान विषय पर कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक पाठकों के पास नहीं पहुँचा। ऐसे में यह विश्व प्रपंच और भी प्रेरणाप्रद साबित हो सकता है। हिन्दी वालों के इस ढुलमुलपन से रामविलास शर्मा कदाचित् ठीक से परिचित रहे होंगे। उन्होंने 1959 में लिखा कि–

---

[1] नया मानदण्ड'; अंक 31 (जनवरी–मार्च 2004), पृष्ठ 32.

ये दोनों ही उद्धरण 'नयामानदण्ड'–31 में, प्रो. मैनेजर पाण्डेय के लेख– "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विकासवाद" से लिये गये हैं। इस लेख का महत्व ही इस बात में है कि इसके द्वारा विश्व प्रपञ्च की भूमिका के महत्व के साथ–साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विज्ञान सम्बन्धी कई अनुवाद कार्यों पर प्रकाश पडता है तथा विज्ञान की समझ और उसके के सामाजिक महत्व के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है।

इधर हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी लेखन या उससे सम्बन्धित किसी भी चर्चा पर जिस तरह का सूखा व्याप्त है, ऐसे में 'नया मानदण्ड' का यह अंक वास्तव में इस बात की कुछ आशा जगाता है कि हिन्दी में विज्ञान या उससे जुड़ी हुई चर्चा का महत्व समझने वाले कुछ सुधीजन इस सूखे से हिंदी–साहित्य की रचनाधर्मिता और उसके व्यापक उद्देश्यों को पहँचने वाली हानि के प्रति चिन्तित हैं।

नया मानदण्ड का यह अंक (जन–मार्च 2004, अंक 31) 'आचार्य शुक्ल के विकासवाद–भौतिकवाद' पर केन्दित है। यह अंक आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी से कुसुम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित है। वास्तव में नया मानदण्ड का यह अंक शोध संस्थान से ही प्रकाशित शुक्ल जी के 27 अप्रकाशित (तब तक) निबन्धों का संग्रह 'चिन्तामणि–4' के प्रकाशन के बाद आया है। चिन्तामणि–4 (सं. कुसुम चतुर्वेदी/डॉ. ओऽमप्रकाश सिंह) में शुक्ल जी के विज्ञान विषयक दो लेख संकलित हैं। इन दोनों लेखों – " आकाश का नीला रंग" और "निद्रा रहस्य" पर संक्षिप्त टिप्पणी अध्याय–4 में यथास्थान आगे दी गई है)

"उनकी भूमिका पुस्तक का अभिप्राय समझने ही में सहायक नहीं होती। उन्होंने हैकल के बाद की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करके मूल विवेचन को अपने युग के पाठक के लिए पूर्ण बनाया x x x हिन्दी में पहली बार इतने–विस्तार से विज्ञान का अध्ययन किया गया x x x (सम्भवतः अब तक के लिए अंतिम बार भी!)।"[1]

---

[1] रामविलास शर्मा–'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना', राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति सन् 2000, पृष्ठ 17.

अध्याय चार

द्विवेदी युग की कुछ प्रमुख पत्रिकाओं से चुने हुए ग्यारह लेख (एक टिप्पणी)

पीछे दूसरे अध्याय में हम यह देख आये हैं कि, किस तरह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा द्विवेदी युग के अन्य बहुत से लेखक 'सरस्वती' के माध्यम से तथा अन्यत्र भी सरस्वती के समानान्तर स्वतंत्र रूप से कई पत्र–पत्रिकाओं में हिन्दी में विज्ञान लेखन करते रहे। ये सभी लेखकगण अपने–अपने स्तर से हिन्दी में विज्ञान लेखन करते हुए दो प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे थे। एक तो यह कि लगातार हिन्दी साहित्य के भण्डार–निर्माण में विज्ञान और इससे किसी न किसी रूप में जुड़े हुए अन्य विषय जैसे गणित, ज्योतिष आदि का योगदान अधिकाधिक रूप में सुनिश्चित हो सके तथा दूसरा यह कि भाषिक अनुशासन के माध्यम से विज्ञान जैसे गंभीर विषय के लिए एक समर्थ भाषा का निर्माण और संधान हो सके। इस संदर्भ में पारिभाषिक शब्दावलियों से जुड़ी हुई समस्या तथा उस समय 1906 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से निकले 'वैज्ञानिक कोश' की चर्चा, समस्या के किसी सीमा तक, समाधान के रूप में की जा चुकी है।

अब आगे कहना यह है कि द्विवेदी युग में शुरू हुआ यह अनुष्ठान बहुत आगे तक सफलतापूर्वक न चल सका। द्विवेदी युग में ही हिन्दी में विज्ञान लेखन की लोकप्रियता और भविष्य में आगे उस लोकप्रियता की बलवती होती दीख पड़ती संभावना को देखकर विज्ञान लेखन में रत लेखकों का समूह दो धड़ों में बँट गया। अब (द्विवेदी युग के अंतिम चरण तक आते–आते) 'हिन्दी साहित्य में विज्ञान' तथा 'हिन्दी में विज्ञान साहित्य' वाला विभाजन बहुत सीमा तक स्पष्ट हो चला था। हिन्दीमें लिखने वाले विज्ञान विषय के अध्यापक, विद्यार्थी या विज्ञान प्रेमी अब हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं में अपने लेख कम छपवाने लगे। स्वतंत्र रूप से, इस युग (द्विवेदी युग) के उत्तरार्द्ध में विज्ञान को समर्पित कई प्रकाशन संस्थायें, पत्र–पत्रिकायें आदि प्रकाश में आने लग गई थीं। 1913 ई. में 'प्रयाग के विज्ञान परिषद् की स्थापना, वहीं से (परिषद् से ही) 1915 ई. में 'विज्ञान'

इस चौथे अध्याय में द्विवेदी युग की महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' तथा वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान' तथा कुछ अन्य पत्रिकाओं यथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि से चुने हुए ग्यारह महत्वपूर्ण लेखों के विवेचन के माध्यम से उस समय विज्ञान को लेकर विषय तथा भाषा के प्रयोग सम्बन्धी रूझानों और दृष्टिकोणों को और व्यावहारिक तरह से समझने का प्रयास किया गया है।

इनमें से चार लेख हिन्दी के सात्यिकारों द्वारा लिखे गये है। शेष सात लेख विज्ञान से जुड़े हुए लोगों के हैं। इन ग्यारह लेखों को उनके प्रकाशन के बढ़ते हुए क्रम में रखा गया है। लेखों का चयन विषय के महत्व को ध्यान में रखते हुए किया गया है। सरस्वती आदि पत्रिकाओं में 1900 ई.–1920 ई. के बीच प्रकाशित ग्यारह चुनिंदा लेखों के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी सहित लेखों का क्रम उनके प्रकाशन वर्ष के बढ़ते क्रम में हैं दिये जा रहे लेखों की परिचयात्मक सूची इस प्रकार है–

लेख सं.	लेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पत्रिका	प्रकाशन वर्ष
1.	पेट की आत्मकहानी	महेन्द्रुलाल गर्ग	सरस्वती	सितम्बर, 1904ई.
2.	आँख	पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	सरस्वती	फरवरी–मार्च, 1905 ई.
3.	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	शुकदेव प्रसाद तिवारी	सरस्वती	अप्रैल, 1906 ई.
4.	शब्द और प्रकाश की चाल	राय देवी प्रसाद	सरस्वती	अप्रैल, 1908 ई.
5	[illegible]	महेन्द्रुलाल गर्ग	सरस्वती	अक्टूबर, 1908 ई.

6.	निद्रा रहस्य,	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी	अक्टूबर, 1912 ई.
7.	पदार्थ और शक्ति	चन्द्रशेखर वाजपेयी	सरस्वती	दिसम्बर, 1914 ई.
8.	लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत	गंगा प्रसाद वाजपेयी बी.एस. सी.	विज्ञान	जून, 1916 ई.
9.	सूर्य–शक्ति	महेश चरण सिंह	विज्ञान	अप्रैल, 1917 ई.
10.	पृथ्वी की उत्पत्ति	जगन्नाथ खन्ना	सरस्वती	मई, 1917 ई.
11.	आकाश का नीला रंग	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी	आषाढ़–श्रावण 1919 ई.

पेट की आत्म कहानी

लेख सं. 1

महेन्दु लाल गर्ग

सरस्वती, सितम्बर, 1904

लेख के बारे में–

यह लेख सचित्र है। चित्र, पेट के अनुदैर्ध्य काट के रूप में पेट के भीतरी भागों को दर्शाता है। यह लेख बहुत ही विनोदपूर्ण शैली में लिखा गया है। पेट अपनी कहानी कुछ इस तरह शुरू करता है–

"शरीर नामी टापू के बीचों बीच मेरी बस्ती है। आस पास और भी कई बस्तियाँ हैं जिनसे मेरा बड़ा लेन–देन रहता है। हम सब एक दूसरे की सहायता करना ही अपना धर्म समझते हैं। जब तक आप हमारे परकोटे को भेदकर हमारा भेद न देख लें तब तक मै अपना पूर्ण वृत्तान्त नहीं समझा सकता। तो भी आज आपको दो–चार बातें कहनी हैं। हमारे यहाँ ऋतु सदा मनोभावनी बनी रहती है, सर्दी तो कभी पड़ती नहीं और न खुश्की आती है। मेरे एक गांव का नाम "आमाशय" है जो ठाकुर "पाचन" सिंह जी की जमींदारी का सदर मुकाम है। जमींदारी भर में इस गांव से बड़ा और कोई मौजा नहीं है। इसी गांव से लगा हुआ यकृत– गिरि नाम का एक बड़ा पहाड़ है जहां से "पित्त" गंगा निकलकर "आमाशय" से कुछ ही दूर आगे पाचन– सिंह की जमींदारी में आ बहती है। "आमाशय" से नीचे एक और पहाड़ी है जिसको अंग्रेज लोग "पैक्रियास" कहते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लेख को रोचक तथा हिन्दीके पाठकों के लिए बोधगम्य बनाने के लिए लेखक ने तरह–तरह की उपमाओं का प्रयोग किया है। कहीं ''यकृत'' को पहाड़, अग्नाशय (पैक्रियास) को पहाड़ी, 'पित्त'' को गंगा कहा गया है। लेख में ही आगे दाँतों को छोटी चक्की भी कहा गया है।

आँख

लेख सं. 2

–पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

सरस्वती, फरवरी–मार्च 1905 ई.

लेख के बारे में

यह लेख सचित्र है।

लेख की शुरूआत होती है संस्कृत में आँख संबंधी दो श्लोकों से –

"य" एषोक्षिपि पुरुषोदृश्यतएष आत्मेति

चैतदमृतम्भयमेतद ब्रह्म"

–छान्दोग्य 4/15/1

"अक्षि चष्टेरनक्तेरित्यग्रायणस्तस्मादेत

व्यक्तरे इव भवतः"

–निरुक्त1/3/4

लेख में कुल पांच वैज्ञानिक चित्र है तथा एक चित्र इन पाँच चित्रों के अतिरिक्त आंख का है। ये सभी चित्र विषय को न सिर्फ रूचिकर बनाते हैं बल्कि विषय के वैज्ञानिक विवेचन को पाठक के लिए बोधगम्य भी बनाते हैं। इन चित्रों का विवरण इस प्रकार है–

चित्र 1 – यह चित्र आँख के स्नायुतन्तुओं को दिखाता है तथा इसी चित्र का एक भाग (ग) आँख में अवस्थित शंकु और छड़ियों का रेखाचित्र प्रस्तुत करता है।

चित्र 2 – चित्र 2 आँख के अनुलम्ब काट (***Longitudinal cross section***) का रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। इस चित्र में वस्तुओं का प्रतिबिम्ब आँख पर कैसे बनता है, यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है।

चित्र 3– यह चित्र प्रिज़्म द्वारा मोमबत्ती के प्रतिबिम्ब का आँख द्वारा विश्लेषण करने के संदर्भ में है।

चित्र 4– यह चित्र लेंसों के प्रकार, उनकी बनावट आदि को समर्पित है। इस चित्र में उत्तल, अवतल, उभयोत्तल, उभयावतल, समतलोत्तल तथा समतलावतल लेंसों को बनाकर दिखाया गया है।

चित्र 5– यह चित्र उभयोत्तल लेंस द्वारा प्रतिबिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को समझाता है। इसमें लेंस के फोकस को अंशुनाभि कहा गया है। दिलचस्प है यह शब्दावली, हिन्दी माध्यम से विज्ञान विषय के विद्यार्थियों के लिए भी है क्योंकि आज सभी लोग अपसरण बिन्दु (***Point of convergence***) का फोक्स के रूप में ही जाबते हैं।

लेख की भाषा बहुत ही परिष्कृत तथा विषय का विकास एक वैज्ञानिक क्रम से किया गया हैं लेख में जो कुछ भी लिखा गया है वह अत्यंत ही महत्वपूर्ण और सारयुक्त है। यहां तक कि आज के विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए भी इस लेख में दी गई जानकारी खासे महत्व की है। प्रस्तुत है लेख से उद्धृत एक नमूना।

"आँख बाहर से प्रायः गोलाकार होती है। समाने ही जो काँच की सी झिल्ली दिखाई देती है उसे कॉर्निया कहते हैं। इसके पीछे थोड़ी दूर पर आइरिस नाम की झिल्ली है, यह वही रंगीन गोल पदार्थ है जो आँख के सफेदे

के बीच में दिखाई देता है। इस झिल्ली में एक छिद्र होता है। वह मनुष्य की आँख में गोल होता है, बिल्ली की आँख में तंग और लंबा होता है। इसी के द्वारा किरण आँख के भीतर प्रवेश करती है। ..... आँख की विशेष उपयोगिता इसी में है कि इसके प्रबन्ध के लिए कितने ही स्नायु हैं जो इसको समय–समय पर मोड़ वा बदल सकते हैं। अन्दर के सिलियरी छल्ले का हाल कह ही चुके हैं। यह समीपावलोकन के लिए काँच को दबाकर अधिक उन्नतोदर कर देता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेख की भाषा अत्यंत ही सरल और हिन्दीपाठकों के अनुरूप है। विज्ञान लेखन में ऐसी भाषा न सिर्फ़ स्वागत योग्य है बल्कि आज के विज्ञान लेखकों के लिए प्रेरणादायी भी।

लेख में प्रयुक्त कुछ वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके अंग्रेज़ी रूपान्तर यहाँ दिये जा रहें हैं क्योकि मुझे ऐसा लगता है कि जिन हिन्दीशब्दावलियों का प्रयोग गुलेरी जी ने किया है वे उनकी स्वयं की गढ़ी हुई हैं या फिर संस्कृत या अन्य भाषाओं से उनके प्रतिस्थाप्य उठा लिये गये हैं। आज ऐसी शब्दावलियाँ हिंदी–विज्ञान–लेखन में प्रचलित नहीं है। आज अधिकांश वैज्ञानिक शब्दावलियों का अंग्रेज़ी रूपान्तर ही देवनागरी में लिख दिया जाता है। आज हिन्दीमें विज्ञान लेखन करने वाला लेखक लेंस (***Lens)*** को ताल नहीं लिखता। लेंस को लेंस ही लिखता है और कदाचित् ताल लिखने पर पाठकों को शब्द के मूल अर्थ को समझने में असुविधा भी होगी। ध्यान देने वाली बात यह है कि कुछ शब्दावलियों को गुलेरी जी ने ज्यों का त्यों देवनागरी में ही लिख दिया है। उनका हिन्दी प्रतिस्थाप्य प्रयोग नहीं किया है जैसे –

रेटिना (***Retina***) को रेटिना ही लिखा है।

आइरिस ***(Iris)*** को आइरिस ही लिखा है।

कॉर्निया (***Cornea***) को कॉर्निया ही लिखा है।

सिलिएरी (***Cilliary***) को सिलिएरी ही लिखा है।

गुलेरी जी द्वारा प्रयुक्त कुछ हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावलियाँ और उनके अंग्रेज़ी रूपान्तर इस प्रकार हैं–

1. ताल	–	***Lens***	(लेंस)
2. अंशुनाभि	–	***Focus***	(फोकस)
3. उन्नतोदर	–	***Convex***	(कॉनवेक्स)
4. नतोदर	–	***Concave***	(कॉनकेव)
5. त्रिपार्श्व	–	***Prism***	(प्रिज़्म)

गुरुत्वाकर्षण शक्ति

लेख सं. 3

–शुकदेव प्रसाद तिवारी

सरस्वती, अप्रैल 1906

लेख के बारे में

यह एक सचित्र लेख है। कुल 5 चित्र लेख हैं इस लेख में। अपेक्षाकृत यह लेख पत्रिका में प्रकाशित अन्य लेखों से कुछ बड़ा है। दुर्लभ वैज्ञानिक जानकारियों तथा उन्हें पुष्ट करने वाली सरल गणनाओं और स्वच्छ तथा आकर्षक रेखागणितय चित्रों से इस लेख का पाठ सामान्य तथा विशेष दोनों तरह के पाठकों के लिए समान रूप से रूचिकर तथा महत्वपूर्ण है।

लेख की शुरूआत संस्कृत के एक श्लोक से होती है तथा श्लोक में पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के बारे में बताया गया है।

'''आकृष्टि शक्तिश्च महीतयां यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्तया।

आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क पतत्वियं खे''।।

–गोलाध्याय

विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की व्याख्या की दृष्टि से यह लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें एक शब्द बार–बार आता है– ''तजरिबा'' तजरिबा से लेखक का आशय प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) से है। उदाहरण के लिए–

"इस अत्यधिक दूरी पर, मान लीजिए, कि उसने तजरिबा किया– गोली हाथ से छोड़ दी, कि देखें न्यूटन साहब का कहना, कि इतनी दूरी पर भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है, सही है या नहीं।"

इस लेख की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्थान–स्थान पर विषय को समझाने के लिए बहुश्रुत प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) किये गये हैं। चूँकि लेख 'गुरुत्वाकर्षण शक्ति' पर केन्द्रित है और हम सबको यह मालूम है कि इस विषय पर सर्वमान्य बात सबसे पहले न्यूटन ने की थी इसलिए लेख में कई स्थान पर, न्यूटन का नाम, उसका सिद्धान्त, उसके द्वारा सुझायी गई विधियां/युक्तियाँ, उसके द्वारा किये गये प्रयोग आदि स्वाभाविक तौर पर आते हैं।

लेख में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अतिरिक्त "केपलर" के ग्रहीय गतियों सम्बन्धी नियम भी दिये गये हैं। साथ ही, न्यूटन की परम प्रसिद्ध पुस्तक "प्रिसीपिया" (मैथमेटिका) की चर्चा भी की गई है। लेखक के अनुसार न्यूटन ने अपनी इस पुस्तक में "केपलर" के तीनों नियमों का कारण केवल गुरुत्वाकर्षण बतलाया है।

लेख में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम तथा केपलर के ग्रहीय–गति सम्बन्धी नियमों के अतिरिक्त अन्य पाँच प्रमुख बातों से पाठक को अवगत कराने का प्रयास किया गया है। ये पाँच बातें इस प्रकार हैं–

पहली बात एक अतिसाधारण किन्तु बहुत ही स्वाभाविक प्रश्न के रूप में है। प्रश्न यह है, कि, वस्तुओं को समान ऊँचाई से पृथ्वी की ओर स्वतन्त्र रूप से छोड़ने पर , उनके पृथ्वी पर पंहुचने में लगे समय में क्या सम्बन्ध होना चाहिए? (अथवा है?), बशर्ते उनके द्रव्यमान समान हों। उत्तर के रूप में लेखक ने वायु के उत्प्लावन बल की चर्चा करते हुए यह बताया है कि यदि वायु की उपस्थिति न हो तो बड़ी या छोटी कैसी भी वस्तु क्यूं न हो सभी समान समय में पृथ्वी पर

एक साथ पहुँचेगी (बशर्ते वो सारी शर्तें जो प्रश्न में दी गई हैं पूरी हो रही हों)। एक बात जो इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है, वह यह कि –

"यदि आपने इन चीज़ों को पृथ्वी से सोलह फीट की दूरी से छोड़ा होगा तो तजरिबे से ज्ञात होगा कि प्रत्येक को गिरने में केवल एक सैकंड लगा है।"

दूसरी बात, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति की तुलना प्रकाश की तीव्रता से की गई तुलना है, और यह बताया गया कि, जिस नियम से गुरुत्व–बल घटता या बढ़ता है उसी प्रकार के एक नियम से प्रकाश की तीव्रता भी घटती–बढ़ती है। किंतु लेखक ने उस नियम का नाम नहीं लिया है। केवल सूचना के लिए मैं अपनी ओर से इतना जोड़ दूँ कि इस नियम को "लैम्बर्ट का कोज्या नियम" (***Lambert's cosine rule***) कहते हैं।

तीसरी महत्वपूर्ण बात, पुनः एक सहज प्रश्न के रूप में है। "यदि पृथ्वी चन्द्रमा को खींचती है और सूर्य पृथ्वी को खींचता है तो चन्द्रमा पृथ्वी से और पृथ्वी सूर्य से टकराकर ये सब चूर–चूर क्यों नहीं हो जाते ? .... और जहाँ पृथ्वी पहले थीं वहीं अब भी विद्यमान है। असंख्य वर्षों के आकर्षण ने इन्हें अपने स्थान से जरा भी नहीं हटाया। आकर्षण के नियम के विरूद्ध ऐसा होता हुआ क्यों जान पड़ता है?"

इसके उत्तर के रूप में लेखक पुनः सामान्य बोध–सम्मत गणनाओं का सहारा लेता है और जो सिद्धान्त उभरकर सामने आता है वह है 'कक्षीय–वेग का सिद्धान्त'। कक्षीय–वेग के सिद्धान्त में ही यह बात शामिल है कि एक निश्चित वेग से तथा एक निश्चित कक्षा में घूमता हुआ कोई भी पिण्ड बिना ऊर्जा–क्षय किये हुए अनन्त संभावित युगों तक घूमता रह सकता है। इसे समझाने के लिए लेखक यह कल्पना करता है कि यह वेग मान लो जैसे किसी तोप ("जैसी कि अब तक नहीं ईजाद हुई") से पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य आदि गोलों को छोड़ने से प्राप्त हुआ है।

लेखक को विश्वास है कि विज्ञान का पाठक तो सरलता से इस सिद्धान्त को समझ लेगा किन्तु सामान्य पाठक इसे नहीं समझ पायेगा इसलिए वह इतनी विचित्र कल्पना का सहारा लेता है और सामान्य पाठकों को यह आगाह भी करता है कि–

"यह न समझिए कि यह केवल उपन्यास है। यथार्थ में यह बात ऐसी ही होती है। चन्द्रमा तोप से तो नहीं छोड़ा गया, परन्तु उसकी गति इस तरह के तोप के गोले ही की सी है।"

यहाँ से एक बात तो स्पष्ट जो जाती है कि लेखक ने यह लेख विशेषतौर पर हिन्दीभाषा में विज्ञान के सामान्य पाठकों के लिए ही तैयार किया है।

चौथी महत्वपूर्ण बात के रूप में, लेखक ने पृथ्वी की कक्षा की आकृति की चर्चा की है और बताया है कि पृथ्वी की कक्षा वृत्ताकार न होकर अण्डाकार है तथा ऐसी कक्षाओं के, वृत्ताकार कक्षाओं से भिन्न, दो केन्द्र होते हैं तथा सूर्य उन दोनों में से किसी एक केन्द्र पर अवस्थित होता है। इस प्रकार पृथ्वी की दूरी सूर्य से सदैव समान नहीं रहती। एक वर्ष में पृथ्वी एक बार सूर्य के निकट तथा एक बार दूर हो जाती है। जब सूर्य के निकट पृथ्वी पहुंचती है तो वेग बढ़ जाता है और दूसरी स्थिति में वेग कम हो जाता है। बाकी स्थितियों में वेग एक बार सामान्य तथा एक बार औसत रहता है। मूल लेख में चित्र–3 की सहायता से लेखक ने इसे समझाया है।

पाँचवी और अंतिम महत्वपूर्ण बात इस लेख की – 'घर्षण का नियम' है। घर्षण के नियम के ही तहत लेखक ने न्यूटन के गति के नियमों की भी चर्चा की है। इन सभी विषयों पर चर्चा करने के बाद लेखक गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को सर्वव्याप्त बतलाता है तथा इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति को ज्वार–भाटे सदृश महत्वपूर्ण भौगोलिक परिघटनाओं के लिए भी उत्तरदायी कारक बतलाता है।

"इसी आकर्षण शक्ति से पुच्छलतारों की गति और उपग्रह की चाल इत्यादि जानी जाती है। इसी से ज्वार–भाटे का आना सिद्ध होता है। और–और बातें भी, जो सूर्य के कांतिमण्डल में होती हैं इसी से जानी जाती हैं।" इस उद्धरण का यह जो आखिरी वाक्य है कि–"और–और बातें भी जो सूर्य के कांति–मण्डल में होती है, इसी से जानी जाती है," आज के वैज्ञानिक शोध का बड़ा गम्भीर और महत्वपूर्ण विषय है। प्लाज़्मा–भौतिकी के विकास के बाद से वैज्ञानिकगण सूर्य की आन्तरिक बनावट (वैज्ञानिकों की परिकल्पना है कि यह प्लाज्मा रूप में ही है) की जानकारी के सहारे समस्त खगोलीय पिण्डों के बीच आकर्षण शक्ति के उत्तरदायी कण (ग्रेविटॉन) के बारे में सोच रहे हैं। ध्यातव्य है, आइन्स्टीन ने अपने 'सापेक्षिकता के सामान्य–सिद्धान्त' ***(General theory of relativity)*** को अधूरा इसीलिए छोड़ दिया था क्योंकि उसके जीवन काल में यह बात नहीं उभर पाई थी कि सूर्य आदि पिण्डों के वायुमण्डल में पदार्थ की चौथी अवस्था, प्लाज्मा, पाई जाती है।

इस प्रकार यह लेख सामान्य तथा विशेष दोनों ही पाठकों के लिए विचारोत्तेजक है।

शब्द और प्रकाश की चाल

लेख सं. 4

–राय देवी प्रसाद

सरस्वती, अप्रैल 1908

लेख के बारे में

लेख की शुरूआत लेखक ने एक बड़े ही स्वाभाविक प्रश्न से की है–

"क्या सचमुच ही शब्दा और प्रकाश चलते हैं अथवा यह लेखक ही की कोई चाल है?" यह प्रश्न लेखक ने पाठकों की ओर से किया है और अगली ही पंक्ति में यह साफ कर दिया कि– "यथार्थ में शब्द और प्रकाश चलते हैं" इतना ही नहीं लेखक ने लेख का ध्येय निश्चित करते हुए पाठकों को आश्वस्त किया कि–"यथार्थ में शब्द और प्रकाश चलते हैं और यही इस लेख में सिद्ध करना है। सिद्ध ही नहीं करना, किन्तु दिखलाना है कि एक सैकेंड में कितने मील शब्द और प्रकाश दौड़ता है?" यहाँ शब्द का आशय ध्वनि से लगाया जाना चाहिए।

यह लेख स्पष्ट रूप से 7 महत्वपूर्ण शीर्षकों में विभाजित है तथा विषय को पाठक के लिए रोचक तथा बोधगम्य बनाने के लिए लेख में 3 चित्र भी दिये गये हैं। इन शीर्षकों तथा चित्रों का विवरण इस प्रकार है–

शीर्षक 1 – शब्द की दौड़

शीर्षक 2 – चाल की नाप

शीर्षक 3 – पानी में शब्द की चाल

शीर्षक 4 – प्रकाश का वेग

शीर्षक 5 – बृहस्पति ग्रह और उसके चन्द्र

शीर्षक 6 – दृश्य जगत् की अपारता

चित्र 1, चित्र 2 तथा चित्र 3 क्रमशः एक सरल "धतूरे" (लेखक के अनुसार पानी में ध्वनि की चाल सुनने का एक यन्त्र) प्रकाश का वेग नापने के लिए एक सरल प्रयोग तथा चन्द्र–प्रकाश की चाल संबंधी छोटी सी गणना को समर्पित है।

जानकारी देने के दृष्टिकोण से यह लेख महत्वपूर्ण तो है ही उससे भी अधिक महत्व इस लेख की शैली का है। आसान शब्दावलियों की सहायता से, प्रभावशाली वैज्ञानिक विवेचन इस लेख की विशेषता है। लेख मूलतः संवाद शैली में लिखा गया है, किन्तु ये संवाद अलग से प्रकट नहीं होते, लेख की भाषा के प्रवाह में ही खप जाते हैं। ऐसा लगता है लेखक, पाठक से बात करता चलता है।

वैसे तो सारा का सारा लेख अत्यंत ही रोचक, महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक जानकारी से लैस है किन्तु जिस महत्वपूर्ण अंश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है वह खासे महत्व का है। यह जानकारी वस्तुतः प्रकाश के चाल की गणना से संबंधित है इस अंश को प्रस्तुत करने से पहले इससे संबंधित चित्र को दिखाना अनिवार्य है क्योंकि इस अंश में दी गई गणनायें चित्र पर निर्भर हैं और यह चित्र इसी लेख का तीसरा चित्र है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

चित्र– 3

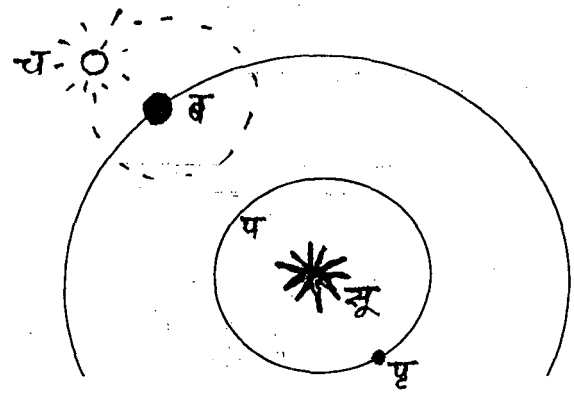

इस लेखांश (जो आगे उद्धृत किया जा रहा है) के बारे मे खासे महत्व की बात यह है कि इसमें प्रकाश की चाल निकालने की एक बहुत ही सरल विधि बताई गई है और इसके लिए जिस विशेष जानकारी की चर्चा होनी चाहिए थी उसकी चर्चा लेख ने इससे ठीक पहले के शीर्षक "बृहस्पति ग्रह और उसके केन्द्र" के अंतर्गत कर दी है और वह यह कि बृहस्पति ग्रह के पास भी पृथ्वी की ही भाँति अपने चाँद (उपग्रह) है और इनकी संख्या (उस समय) चार है तथा बृहस्पति पर भी पृथ्वी की ही भाँति चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण लगते हैं।

लेखांश –

"अब कल्पना कीजिए कि "सू" सूर्य्य (वर्तनी का स्वरूप मूल लेख में जैसा है वैसा ही यहाँ भी लिखा जा रहा है) की जगह है, "च" पृथ्वी की जगह, "ब" बृहस्पति की जगह, और "व" उसके उक्त चन्द्र की जगह जिसमें ग्रहण पड़ रहा हैं। (देखें पिछे चित्र सं. 3)

जिस समय "प" का ज्योतिषी "च" को देखता है, चन्द्र के प्रकाश को "च" से "प" तक का सफर तै करना पड़ता है। परंतु जब पृथ्वी "सू" की परिक्रमा करती हुई "पृ" पर पहुंचती है तब इस प्रकाश को "प" से "पृ" तक का सफर अधिक तै करना पड़ता है तब ग्रहण देखे जाने में 16 मिनट 36 सेकेंड की देर हो जाती है अर्थात् यदि ग्रहण पड़ना चाहिए ठीक 12 बजे तो "पृ" पर देख पड़ता है 12 बजकर 16 मिनट 36 सैकिंड पर। तो यह 16 मिनट 36 सैकिंड कहाँ खा गये? उत्तर स्पष्ट है कि प्रकाश को "प" से "पृ" तक का अधिक सफर तय करना पड़ा, उसी में वह समय खप गया।

अब त्रैराशिक लगा लो कि "प" से "पृ" तक का प्रकाश इतनी देर में चलता है तो एक सैकिंड में कितना चलता है? सूर्य्य से जो पृथ्वी की दूरी है उसी का दूना "प" से "पृ" है, अर्थात् 9,23,00000 मील का दूना, जो बराबर 18,50,00000 मील के है। जब इतने मील प्रकाश 16 मि. 36 सैकिंड में अर्थात् 996 सैकिंड में चला है तब एक सैकिंड में वह 1,85,744 मील चलता है।

दूसरी युक्ति से 1,86,300 मील प्रति सैकिंड आता है। एक लाख 86 हजार मील वेग गति मानने में प्रायः सारे वैज्ञानिक सहमत हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि राय देवी प्रसाद महोदय ने एक बहुत ही सरल युक्ति से प्रकाश के चाल की गणना का तरीका पाठकों के सामने रखा है। यह एक नई जानकारी है।

इसके अतिरिक्त लेख में दो–तीन स्थल और भी हैं जहां लेखक ने नई जानकारी देने का प्रयास किया है लेकिन इन जानकारियों को विधिवत् न देकर केवल उनके संकेत मात्र दिये गये हैं, जैसे– दृश्य जगत की अपारता शीर्षक में सापेक्षिकता के सिद्धान्त की झलक मिलती है, 'पानी में शब्द की चाल' शीर्षक में चाल की निर्भरता किस प्रकार ताप और घनत्व पर होती है, इसकी जानकारी मिलती है आदि।

लेखक ने लेख का जो ध्येय आरम्भ में निश्चित किया था उसे प्राप्त करते हुए वह शब्द अर्थात् ध्वनि की चाल भारत की जलवायु के सापेक्ष (ध्यान देने वाली बात है कि ध्वनि की चाल जलवायु की दशाओं पर भी निर्भर करती है, शुष्क जलवायु में ध्वनि की चाल आर्द्र जलवायु से कम होती है, वर्षाकाल में जलवायु के आर्द्र होने के कारण ध्वनि की चाल बढ़ जाती है) कम से कम, 1100 फीट (एक सैकिंड में) है। अपने प्रेक्षण और तर्क के पक्ष में लेखक एक संतुलित गणना भी प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह लेख विज्ञान के सामान्य पाठकों के लिए ही नहीं वरन् विज्ञान के प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है, विशेषकर उस समयावधि के संदर्भ में यदि देखें जब विज्ञान पर अंकिक गणना पर आधारित लेख लगभग नहीं छप रहे थे, यह लेख निश्चित ही बहुचर्चित रहा होगा।

रक्त–भ्रमण

लेख सं. 5

–महेन्दु लाल गर्ग

सरस्वती, अक्टूबर 1908

लेख के बारे में

इस लेख का पहला वाक्य ही संकेत देता है कि यह लेख हिन्दी माध्यम से विज्ञान समझने वाले सामान्य पाठकों को लक्ष्य करके लिखा गया है। "रक्त भ्रमण समझना कुछ कठिन नहीं है।" इसे समझाने के लिए लेखक ने अपेक्षाकृत छोटे लेख का सहारा लिया है। लेख सचित्र है। एक ही चित्र है, इस लेख में, लेकिन यह चित्र ही पर्याप्त है, मानव शरीर में रक्त भ्रमण के मूल सिद्धान्त को समझने के लिए। विज्ञान में प्रायः ऐसा होता है कि किसी विषय को समझाने के लिए चित्र का सहारा लिया जाता है लेकिन मुझे यहाँ लगता है कि इस चित्र को समझाने के लिए लेखक ने लेख लिखा है। चित्र तनिक उलझाऊ है। चित्र हृदय तथा उसे जुड़ी धमनियों और शिराओं के बारे में है।

एक बात जो इस लेख की भाषा के बारे में ध्यान देने योग्य है वह यह कि लेखक ने अपनी ओर से वैज्ञानिक शब्दावलियों का हिन्दीरूपान्तर प्रस्तुत ना करके लेख को भाषायी स्तर पर बोझिल होने से बचा लिया है। उदाहरण के लिए लेखक ने ***(Auricles)*** को ऑरिकिल्स ही लिखा है जबकि आज विज्ञान में इसका हिन्दीरूपान्तर "आलिन्द" प्रचलित है, (***Ventricle***) को वेन्ट्रिकिल्स ही लिखा है जबकि आज विज्ञान में इसका हिन्दीरूपांतर "निलय" प्रचलित है इसी प्रकार आरट्रिज़ और वेन्स को भी लेखक ने हिन्दीमें रूपांतरित न करके ठीक ही किया है। वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिन्दीरूपांतर किस तरह विषय को बोझिल

बना सकते हैं इसे समझने के लिए विज्ञान विषय पर, विद्यालयों में, चलने वाली पाठ्यपुस्तकों को देख लेना पर्याप्त होगा। भाषा में प्रवाह को बाधित होने से बचाने के लिए वैज्ञानिक शब्दावलियों के हिंदीकरण से यथा सम्भव बचना चाहिए। हृदय की पूरी कार्यविधि की जानकारी ही इस लेख के कथ्य का निर्माण करती है। किस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय से निकलकर शरीर के शेष भागों को जाता है तथा पुनः वहां से अशुद्ध रक्त हृदय में शुद्ध होने के लिए कैसे, किन–किन भागों से होकर आता है, यही समझाया गया है इस लेख में। प्रस्तुत है लेख से उद्धृत एक महत्वपूर्ण अंश–

"रक्त भ्रमण का मार्ग इस प्रकार समझना चाहिए – दाहिने ऑरिकिल से दाहिले वेन्ट्रिकिल में, वहाँ से फेफड़े में जाने वाली आरट्री में। फेफड़े में रुधिर कैपिलरीज़ में बँट जाता है। ये कैप्लिरीज़ फेफड़े की उन पोली कोठरियों की दीवार में फैली होती हैं जिनमें सांस लेने की हवा ठहरती है। यहाँ रूधिर शुरू होकर जिन नलियों के द्वारा हृदय में लौटता है वे पल्मोनरी वेन्स कहलाती हैं। ये नलियां बायें वेन्ट्रिकिल में आकर खत्म होती हैं। वहाँ से रूधिर बायें वेन्ट्रिकिल में दाखिल होता है ओर फिर एऑर्टा नामक मोटी नली द्वारा सिर धड़ और हाथ पैर की आरट्रीज़ और कैप्लिरीज़ में बँट जाता है। शरीर के अवयवों का पालन करके और अस्वच्छ होकर वेन्स के द्वारा रूधिर दो बड़ी–बड़ी मोटी नलियों से दाहिने ऑरिकिल में जा पहुँचता है।"

निद्रा रहस्य

लेख सं. 6

–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

नागरी प्रचारिणी पत्रिका

अक्टूबर 1912

लेख के बारे में

निद्रा रहस्य पढ़कर शुक्ल जी के बारे में एक मज़ेदार रहस्य जो खुलता है वह यह कि शुक्ल जी को कदाचित् अधिक सोने तथा अधिक सोने वालों से कोई परहेज न रहा होगा।

"निद्रा क्या है और कैसे आती है, इसका भेद आज तक नहीं खुला है। भेद चाहे न खुले पर निद्रा के लाभ सब पर प्रकट है। यहां तक कहा जाता है कि निद्रा से कभी हानि पहुंच ही नहीं सकती। x x x बड़े लोगों को भी उतने ही या कभी–कभी उससे अधिक सोने की आवश्कता होती है जितना साधारण लोगों को। बहुत से बड़े लोग दो तीन घंटे ही डट कर काम कर सकते हैं। डार्विन दिन भर में दो घंटे ही, हर्बर्ट स्पेंसर चार घंटे और डेकार्टे सप्ताह में तीन घंटे काम करता था। डॉक्टर जानसन की तरह डेकार्ट (***Decartes***) भी देर तक चारपाई पर पड़ा रहने वाला था। कभी–कभी तो वह दो या तीन बजे सोकर उठता था। 54 वर्ष की अवस्था में उसके मर जाने का कारण उसके अंतरंग मित्रों ने यह बतलाया था कि उसे महारानी क्रिस्टिना (***Queen Christina***) को पढ़ाने के लिए कुछ दिनों से पांच बजे सबेरे ही उठना पड़ता था।"

उपरोक्त लेखांश की प्रारम्भिक तीन पंक्तियाँ लेख की शुरूआती पंक्तियाँ हैं तथा शेष पंक्तियाँ लेख के अंतिम अनुच्छेद की पंक्तियाँ हैं। लेखांश की अंतिम पंक्ति मनोरंजक है तथा उससे पहले की पंक्ति में शुक्ल जी ने यह बताने की आवश्यकता नहीं समझी कि डेकार्ट (दकार्त–प्रसिद्ध फ्राँसीसी गणितज्ञ तथा दार्शनिक) सोता कितने बजे था? क्या मालूम उसके दो–तीन बजे सोकर उठने का कारण उसका बारह एक बजे सोना रहा हो? और उससे भी ऊपर की पंक्तियों में लेखक ने यह साफ नहीं किया कि डार्विन, स्पेंसर आदि, यदि दो या चार घंटे ही काम करते थे तो बाकी समय क्या केवल सोते रहते थे? इन बातों से लेख का कोई सीधा संबंध न बनते हुए भी हमारे लिए इसका महत्व शुक्ल जी के शैली समझने में ही है।

लेख के महत्वपूर्ण अंश वे अनुच्छेद हैं जिनमें 'नींद क्यों आती है?' का उत्तर ढूढ़ने के प्रयास में चार विभिन्न मतों का विश्लेषण किया गया है। ये विश्लेषण बड़े ही दिलचस्प और वैज्ञानिक तेवर वाले हैं।

लेख में, पहले मत के अनुसार मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह मन्द पड़ जाने के कारण मस्तिष्क में स्तब्धता आती है और परिणामस्वरूप नींद आ जाती है। शुक्ल जी ने इस मत का जिक्र करने के तुरंत बाद ही मत की प्रस्तावना से अंसतोष प्रकट करते हुए एक प्रश्न किया है कि, "क्या यह नहीं हो सकता कि मस्तिष्क की स्तब्धता के कारणही रक्त की कमी हो जाती है अर्थात यह रक्त की कमी मस्तिष्क की अमर्मण्यता का फल या कार्य हो, कारण न हो?" बड़ा ही स्वाभाविक प्रश्न है यह। इस प्रश्न से शुक्ल जी के वैज्ञानिक चिन्तन पर प्रकाश पड़ता है। लेख में दूसरा मत इस बात को रेखांकित करता है कि मस्तिष्क में रक्त के प्रवाह की अधिकता के कारण नींद आती है। शुक्ल जी की दृष्टि में यह एक असंगत बात है। इसे मत से अधिक वे एक धारणा बताते हैं, लिखते हैं कि – "अब यह धारणा बिल्कुल असंगत सिद्ध हो गई है।"

लेख में तीसरा मत जो ड्यूवल और कैजल का है, लेखक के अनुसार सबसे आधुनिक मत है। शुक्ल जी लिखते हैं– "सबसे आधुनिक मत ड्यूवल *(Duval)* और कैजल *(Cajal)* का है। x x x मस्तिष्क के कोष्ठ–सेल्स का संबंध ज्ञान तंतुओं से टूट जाता है जिसके कारण तन्द्रा, बेहोशी व निद्रा आती है।" इस सिद्धान्त से भी शुक्ल जी पूरी तरह संतुष्ट नहीं हैं। वे आगे लिखते है। "यह सिद्धान्त ठीक भी हो तो भी इससे हमारी निद्रा सम्बन्धी ज्ञान में कुछ विशेष वृद्धि नहीं होती। न पूरी तरह मनुष्य का थककर सोना कहा गया और न उसके मस्तिष्क प्रकोष्ठों का थककर सोना कहा गया।" लेख के चौथे और अंतिम सिद्धान्त के रूप में फ्लूज *(Pfluge)* का मत दिया गया है। इस मत का प्रस्ताव यह है कि –मस्तिष्क की शिथिलता के कारण ही नींद आती है और मस्तिष्क की शिथिलता का कारण शरीर में ऑक्सीजन और कार्बनडाईऑक्साईड के अनुपात के संतुलन का बिगड़ना है। इस मत से शुक्ल जी तनिक सहमत होते हुए प्रतीत होते हैं और यदि देखा जाये तो यह मत अपेक्षाकृत अधिक तर्कसंगत तथा सहज–बोध सम्मत है।

निद्रा रहस्य सम्बन्धी ये सभी मत और इनका विश्लेषण तो अपनी जगह है, महत्वपूर्ण बात है शुक्लजी द्वारा दिया गया वह निर्णायक वाक्य जिसे उन्होंने सब मतों का निचोड़ कहा है। वे लिखते हैं–

"इन सब बातों का निचोड़ यह निकलता है कि निद्रा कोई अभावजनक और निष्क्रियकारिणी वस्तु नहीं है। बल्कि शरीर की क्षयकारिणी क्रियाओं के स्थान पर पोषणकारिणी क्रियाओं को स्थापित करने वाली वस्तु है। निद्रा की व्यवस्था में पोषण करने वाली एनाबोलिक **(*Anabolic*)** क्रियाएं, ह्रास व क्षय करने वाली कैटाबोलिक **(*Catabolic*)** क्रियाओं की अपेक्षा अधिक होती हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह लेख भाषा के स्तर पर तथा विषय के विश्लेषण के स्तर पर लेखक के हिन्दीमाध्यम से विज्ञान के प्रचार–प्रसार, के दायित्व–बोध को भली–भाँति रेखाँकित करता है।

पदार्थ और शक्ति

लेख सं. 7

– चन्द्रशेखर वाजपेयी

सरस्वती, दिसम्बर 1914

लेख के बारे में

यह लेख मुख्य रूप से पदार्थ और शक्ति के संरक्षण सिद्धान्त को रेखांकित करता है और यह बताता है कि पदार्थ और शक्ति दोनों ही संरक्षित रहते हैं, न उन्हें नष्ट किया जा सकता है और न ही उनका निर्माण संभव है। केवल एक रूप से दूसरे रूप में इनका रूपान्तरण हो सकता है। इसे समझाने के लिए लेखक ने रेलगाड़ी का एक उदाहरण दिया है।

एक महत्वपूर्ण बात, जो लेख लिखे जाने तक (1914 ई. में) आइन्सटीन के जरिये (1900ई. से पूर्व) प्रकाश में आ चुकी थी, का जिक्र लेखक न जाने क्यूं तनिक संकोच के साथ करता है। यह बात है पदार्थ और शक्ति के आपसी संबंध के बारे में। लेखक के विचार देखिए–

"पदार्थ से शक्ति का घनिष्ठ संबंध है। शक्ति ही (के) द्वारा प्रकृति में नाना प्रकार के परिवर्तन हुआ करते हैं। .... पदार्थ और शक्ति का संबंध अभी तक वैज्ञानिकों को निश्चित रूप से नहीं मालूम हुआ। इस विषय में वैज्ञानिकों में बहुत मतभेद हैं। कोई कहते हैं कि पदार्थ और शक्ति (***Matter and energy***) एक ही वस्तु है। किसी का कथन है कि पदार्थ और शक्ति दो भिन्न–भिन्न वस्तुयें हैं पर वे सदैव एक ही साथ रहती हैं।"

इस लेख में शक्ति को एनर्जी और मोशन कहा गया है। एनर्जी और मोशन कह देने से ही बात थोड़ी लड़खड़ाने लगती है। एनर्जी और मोशन, शक्ति अथवा ऊर्जा का एक रूप है, पर्यायवाची नहीं है। दूसरी बात यह कि 1914 ई. तक आइन्स्टीन ने अपने प्रसिद्ध समीकरण ($\Delta E = \Delta mc^2$) (प्राप्त ऊर्जा द्रव्यमान क्षति × प्रकाश की चाल का वर्ग) द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि "पदार्थ और शक्ति का घनिष्ठ संबंध है।" अब आगे कोई भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि "पदार्थ और शक्ति का संबंध अभी तक (1914 ई. तक) वैज्ञानिकों को निश्चित रूप से नहीं मालूम हुआ। इस विषय में वैज्ञानिकों में बहुत मतभेद है।"

इस लेख का महत्व इस बात में है कि यह लेख शक्ति के अनेकानेक स्वरूपों के परस्पर रूपान्तरण को रेखांकित करते हुए इस ब्रह्मांड में शक्ति की महत्ता और व्यापकता से सामान्य पाठकों को अवगत कराता है। पृथ्वी पर की दैनन्दिन घटनाओं से लेकर आकाश जगत की विचित्र और रहस्यपूर्ण घटनाओं में शक्ति की अनिवार्य भूमिका को यह लेख रेखांकित करता है। लेख में कहीं–कहीं भौतिकी के कुछ सिद्धान्तों तथा यंत्रों यथा स्पेक्ट्रोस्कोप आदि का भी नाम आया है जो निश्चित रूप से हिन्दी के पाठकों की जानकारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लेख का अंतिम हिस्सा सैमुअल लैंग नाम के तत्ववेत्ता के मत को समर्पित है जिसमें (क) आस्तिकवाद (ख) अद्वैतवाद (ग) अज्ञेयवाद) (***Agnosticism)*** और (घ) नास्तिकवाद का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। किसी न किसी रूप में शक्ति अथवा ऊर्जा का संबंध इन वादों से जोड़कर इन्हें, लेख के कथ्य के अनुरूप बनाने का प्रयास लेखक ने किया है। कुल मिलाकर यह लेख विज्ञान के सामान्य पाठकों के लिए शक्ति के विभिन्न रूप–रूपांतरों की जानकारी प्रस्तुत करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत

लेख सं 8

गंगा प्रसाद वाजपेयी, बी.एस–सी.

विज्ञान, जून, 1916

लेख के बारे में

इस लेख की शैली बड़ी ही विचित्र है। यदि इस लेख का शीर्षक हटा कर किसी को पढ़ने को दें तो पाठक प्रथम दृष्ट्या ऐसा लगेगा कि मुंशी प्रेमचन्द की कोई कहानी पढ़ने को दी गई है। प्रस्तुत है लेख के प्रारम्भिक अंश का एक नमूना–

"लल्लू तिवारी अपने गाँव के प्रतिष्ठित पुरुषों में गिने जाते हैं। उनके पिता अच्छे मालदार थे पर नील के व्यवसाय में उन्हें यकबारगी 50 हजार का टोटा पड़ गया। कौड़ी–कौड़ी जोड़कर घासीराम ने एक लाख रूपया जमा कर लिया था। मारे लोभ के उन्होंने अपनी आयु भर में तीन गाढ़े की मिरजइयों को छोड़ कभी कोई कपड़ा नहीं बनवाया, गाँव के चमार को जब उधार लेने को रूपया की जरूरत पड़ती तो वह कभी कभी एक जोड़ी चमारू जूता घासीराम की नज़र कर देता था। बस इसी मे बाप–बेटा गुजारा कर लेते थे। घासीराम के घर कभी किसी ने सांझ को चूल्हा जलते नहीं देखा था। मारे कृपणता के उन्होंने अपने पुत्र लल्लू को मदर्से तक नहीं भेजा, घर पर ही रामायण बांचने भर को हिन्दी पढ़ा दी थी।"

इसी प्रकार यह लेख आगे बढ़ता जाता है और कथा का विकास होता जाता है किन्तु ऐसा नहीं कि यह लेख लल्लू तिवारी की ज़िन्दगी की कहानी मात्र है। लल्लू तिवारी, कदाचित एक काल्पनिक पात्र है जिसका सृजन लेखक ने विषय को रोचक बनाने के लिये किया है। उस समय ऐसा बहुत होता रहा कि लेखक गण विज्ञान जैसे तथाकथित दुरूह विषय को जनप्रिय बनाने के लिये कभी कहानी–शैली, कभी नाटक शैली, यहाँ तक कि कभी–कभी कविता में भी विज्ञान विषयक लेख लिखते रहे।

इस लेख की विषय के सन्दर्भ, में विशेषता यह है कि इसमें विद्युत धारा और चुम्बक के आपसी गुणों का अध्ययन किया गया है। पं. शालिग्राम जी की मदद से 'लल्लू तिवारी' को ये विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान मिलते हैं।

इस लेख में विज्ञान से सम्बन्धित एक अंश का नमूना इस प्रकार है–

"यदि कोई मनुष्य जिस ओर बिजली की धारा बह रही है तैरता हुआ माना जाये और मनुष्य का मुख चुंबक की सुई की ओर हो तो उसके बायें हाथ की ओर चुंबक की सुई की वह नोक रहेगी जो साधारण अवस्था में उत्तर की ओर स्थिर रहती है।"

"यदि हम दाहिनी ओर घूमने वाला एक पेंच लें और उसे ऐसे घुमावें कि बिजली की धारा भी उसी वृत्त में जाती हो तो पेंच जिस ओर घूमेगा चुम्बक का उत्तरी ध्रुव (***North pole***)उसी की ओर रहेगा।"

एक बात मैं यहाँ अपनी ओर से जोड़ना चाहूँगा कि उपरोक्त दोनों नियमों में से पहला नियम एम्पीयर के नियम के नाम से तथा दूसरा नियम दायें हाथ के स्क्रू (पेंच) के नियम के नाम से जाना जाता है। लेखक ने अपने लेख में इसका जिक्र कहीं नहीं किया है। यह एक तथ्यात्मक जानकारी है जिसे लेखक को नियम के साथ ही परोसनी चाहिए थी।

यह लेख समाप्त होता है गैल्वेनोमीटर (विद्युत धारा के बहाव की दिशा का ज्ञान कराने वाला यन्त्र) की परिभाषा से। लेखक ने आगे यह कह कर पल्ला झाड़ लिया कि 'विज्ञान के पाठक इन बातों से परिचित हैं इसलिये इनका विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं किया गया।' ध्यान देने वाली बात यह है कि लेखक ने अपने लेख को विज्ञान के पाठकों के लिये ही लिखा है। सामान्य पाठकों के लिये यह लेख वास्तव में किसी उपयोग का नहीं है क्योंकि कई गूढ़ सिद्धान्तों को लेखक सपाट तरीके से कह भर जाता है, कोई टिप्पणी नहीं करता न कोई द्रष्टान्त प्रस्तुत करता है।

सूर्य शक्ति

लेखक सं. 9

–महेश चरण सिंह, एम.एस–सी.

विज्ञान, अप्रैल 1917 ई.

लेख के बारे में

प्रस्तुत लेख में लेखक सूर्य से सम्बन्धित अनेकानेक तथ्यात्मक आँकड़े, यथा पृथ्वी की तुलना में सूर्य का आकार किस कोटि (order) का है, सौर्य प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में कितना समय लगता है? आदि तो प्रस्तुत करता है किन्तु कुछ तथ्यों की तरफ लेखक केवल संकेत मात्र करके छोड़ देता है, उनके बारे में ठीक–ठीक आँकड़े प्रस्तुत नहीं करता। जैसे लेखक यह संकेत तो देता है कि, 'भौतिक विद्या के आचार्यों ने सूर्य का वास्तविक तापक्रम निकाल लिया है।' किन्तु यह ताप वास्तव में कितना है तथा किस विधि से यह ताप निकाला गया है? इसकी चर्चा लेख में कहीं नहीं की गई है जबकि जिस समय यह लेख प्रकाशित हुआ (1917 ई.) तब तक सूर्य के सतह का तापक्रम और तापक्रम निकालने की विधि विज्ञान के विद्यार्थियों को ज्ञात हो चुकी थी। केवल सूचना के लिये बता दूँ कि सूर्य की सतह का ताप लगभग 6000 डिग्री केल्विन बताया जाता है और रेडियोपाइरोमीटर वह यन्त्र है जिसकी सहायता से सूर्य अथवा कहीं दूर रखी अतितप्त वस्तु का ताप (यन्त्र में लगे उत्तल लैंस की सहायता से) ज्ञात किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त लेखक महोदय सूर्य की विशेषता बताते–बताते कुछ भावुक होते जाते प्रतीत होते हैं और परिणामस्वरूप कुछ अतार्किक और अवैज्ञानिक किस्म की बातें भी कर जाते हैं, जैसे–

'नक्षत्रों का राजा सूर्य है, उसकी शक्ति बड़ी अद्भुत है.......... वही आदि और अन्त भी मालूम होता है। कुछ लोग सूर्य को ही मुक्त आत्माओं का निवास स्थान मानते हैं, तब ही तो सूर्य की राशियों के सम्मुख पितरों को पानी देते हैं ताकि उनका दिया हुआ जल राशियों द्वारा सूर्य लोक पहुंचे। यह पानी सचमुच अन्तरिक्ष वासी आत्माओं को तृप्त करता है वा नहीं ईश्वर जाने परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सूर्य की शक्ति ऐसी महान है कि वह सब कुछ अपने में ग्रहण कर सकता है। x x x इसमें आश्चर्य क्या है और सूर्य को परमात्मा की शक्ति से उपमा देने से लाभ क्या है? ऐसी शंका करने वालों की एक बड़ी भूल यह है कि ये लोग केवल नाम के बदलने को सिद्धान्त की व्याख्या समझते हैं। सूर्य की दूसरी विशेषता यह है कि सारे ही तारागण, ग्रह, उपग्रह पार्श्ववर्ती धूमकेतु सूर्य के चारों ओर अनुचर की भाँति घूमते हैं और यह नक्षत्राधिपति अपने ही स्थान पर अचल रहता है। वस्तुतः सूर्य ही सारे संसार का हृदय है उसी की ओर सारी वस्तुएं खिंचती हैं और वह सबका आचार्य है। इसी कारण वेदों में सूर्य का नामा आता है और इसकी शक्ति को परमात्मा की शक्ति का रूप माना जाता है और इसीलिए परमात्मा को अंलकारिक भाषा में ज्योतिस्वरुप कहते हैं।''

लेख से उद्धृत उपरोक्त नमूना विशेषकर रेखांकित अंश तथा इसी लेख के कुछ अन्य अनुच्छेद लेख में हल्कापन ला देते हैं। आज हम सभी जानते हैं कि 'नक्षत्राधिपति' अचल नहीं है, चलायमान हैं अपनी धुरी पर तथा बड़ी–बड़ी आकाश गंगाओं के सापेक्ष भी। पृथ्वी की ही भाँति सूर्य भी गतिमान है। वास्तव में इस अखिल ब्रह्माण्ड का कोई भी पिण्ड अचल नहीं है, यह अब सिद्ध हो चुका है, क्वासर्स, पल्सर, न्यूट्रान तारे आदि की अवधारणायें इसका प्रमाण हैं। इतना ही नहीं यह मानना भी कि 'सूर्य ही सारे संसार का हृदय है, उसी की ओर सारी वस्तुएं खिंचती हैं,' आज एक भ्रम और अवैज्ञानिक बात से अधिक कुछ भी नहीं है। आज सबको मालूम होना चाहिए कि सूर्य केवल उसी सौर्यमण्डल का 'हृदय' है जिसका एक सदस्य हमारी पृथ्वी है, अन्यथा, यदि

अपनी ही सर्पिलाकार आकाशगंगा 'मंदाकिनी' के सापेक्ष देखें तो अपना सूर्य उसकी एक भुजा पर अवस्थित है और गतिशील है तथा मंदाकिनी के चारों ओर परिक्रमा कर रहा है।

यह तो रही बात लेख के सन्दर्भ में कुछ झोलों की, लेकिन ये झोल किसी भी सूरत में उस समयावधि के सन्दर्भ में लेख की उपयोगिता को कम नहीं करते क्योंकि यह लेख हिन्दी के सामान्य पाठकों के लिये महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करता है। इस लेख से उद्धृत इस प्रकार के कुछ महत्वपूर्ण अंश द्रष्टव्य हैं–

"फ्रांसीसी म.पूले (***M. Pouillet***) पदार्थ–विद्या–विशारद का कथन है कि यदि हमारी पृथ्वी के बराबर बर्फ का गोला सूर्य–ताप से प्रभावित हो तो सूर्य का ताप केवल एक मिनट में 11 मीटर और 80 शतांश मीटर मोटी बरफ की तह गलाकर पानी कर दे, और यदि दिन भर ताप लगे तो 17 किलोमीटर मोटी बरफ की तह गलकर पानी हो जावे। इसी प्रकार प्रो. टिण्डल ने हिसाब लगाया है कि यही खालिस सूर्य की किरण 290,00,00,00,00,00 उन्तीस खरब घन किलोमीटर बरफीले पानी को (0 डिग्री सैल्सियस तापक्रम वाले) एक मिनट में उबाल सकती है।"

इन महत्वपूर्ण जानकारियों तथा इन्हीं की जैसी कुछ अन्य जानकारियाँ जो कि इस लेख में दी गई हैं से एक ही बात का पता चल पाता है कि तुलनात्मक रूप से सूर्य अन्य आकाशीय पिण्डों से ताप, आकार, प्रभाव आदि के प्रसंग में कितना शक्तिशाली है। किसी भी दृष्टि से प्रचलित अर्थों में सौर्य शक्ति, सोलर पावर (***Solar Power***) का विवेचन इस लेख का विषय नहीं है। आज जैसा कि हम सभी जानते हैं सौर्य शक्ति को बेहतर रूप में सौर्य ऊर्जा कहा जाता है और इसके नाना प्रकार के उपयोग आदि की बात करके ऊर्जा–संकट के इस युग में इसे (सौर्य ऊर्जा को) ऊर्जा के एक विकल्प के रूप में देखते हैं।

पृथ्वी की उत्पत्ति

लेख सं. 10

–जगन्नाथ खन्ना, बी.एस–सी.इ.इ.

सरस्वती, मई 1917

लेख के बारे में

बहुत ही अवैज्ञानिक और अतार्किक तरीके से इस लेख की शुरूआत हुई है।

"हमारी पृथ्वी की तरह इस ब्रह्माण्ड में और भी कितने ही लोक हैं। इन लोकों के कई विभाग किये गये हैं। उन विभागों में सबसे बड़ा और प्रधान विभाग सूर्य्यलोक (***Solar System***) है। इस विभाग का सबसे बड़ा पिण्ड सूर्य है और हमारी पृथ्वी इसी विभाग का एक लोग है।"

पृथ्वी एक लोक है। पृथ्वी की तरह ही कई लोक हैं। इन (पृथ्वी की तरह ही) लोकों के कई विभाग किये गये हैं। इसी में एक विभाग सूर्यलोक है। पुनः पृथ्वी इसी विभाग का एक लोक है। यह बात और इससे सम्बन्धित पूरा वाक्य गठन किसी भी व्यवस्थित पाठक को भ्रम में डालने वाला है। पृथ्वी (सदृश लोकों) का विभाग, पुनः उसी विभाग का एक भाग पृथ्वी, कितनी हास्यास्पद और भ्रमपूर्ण बात है, यह।

इसी प्रकार हम यह देखेंगे कि लेख में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनमें तथ्यात्मक दोष भी पाया जाता है। एक उदाहरण–

"पता लगा है कि चट्टानों पर यूरेनियम नाम की एक धातु होती है, जो कई पदार्थों से बनी होती है।" आज विज्ञान का प्रारम्भिक विद्यार्थी भी यह जानता है कि यूरेनियम एक खालिस धातु है, यह कई पदार्थों का मिश्रण नहीं। हालाँकि विज्ञान का विद्यार्थी तो फिर भी समझ जायेगा कि लेखक रेडियोधर्मिता (रेडियोएक्टिविट) की बात कर रहा है और चूँकि इस प्रक्रिया में कई नये अवयव बनते हैं इसलिए संभव है लेखक यह कहना चाहता हो कि ये सभी अवयव यूरेनियम में प्राकृतिक रूप से मिश्रित हैं, लेकिन सामान्य पाठक के लिये यह बात भ्रम पैदा करने वाली है क्योंकि ऐसा नहीं होता कि कोई रेडियोधर्मी अवयव जिन अवयवों में आगे टूटता है वह उन सभी अवयवों से मिलकर बना ही हो।

इसी प्रकार लेखक इसी लेख में एक अन्य स्थान पर धातुओं के स्पेक्ट्रम (वर्णक्रम) की बात कहना चाहता है किन्तु अपनी बात को सामन्य पाठकों तक पहुँचाने में पुनः असफल हो जाता है क्योंकि जो बात लेख में कही गई है सामान्य पाठकों के लिये वह कुछ अधिक विस्तार तथा स्पष्टीकरण की माँग करती है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बन्धी विवेचन में यह लेखांश अप्रासंगिक भी है और स्वयं लेखक भी इस लेखांश को लेख में खपा नहीं पाया है। प्रस्तुत है यह लेखांश–

"किसी झाड़ या फानूस के लटकने वाले त्रिकोण काँच में यदि हम कोई साधारण रोशनी डाल कर नेत्रों द्वारा देखें तो उस कांच से पार होकर वह उज्जवल रोशनी वर्षाकालीन इन्द्रधनुष के सदृश नीले, लाल इत्यादि कई रंगों में परिवर्तित होकर दिखाई पड़ने लगती है। अर्थात् साधारण रोशनी जब इस त्रिकोण कांच के द्वारा हमारे नेत्रों तक आती है तब उसके सात रंग हो जाते हैं। यदि इस साधारण रोशनी को पहले किसी खास धातु के भीतर से छान लें और तब उस त्रिकोण काँच पर डालें तो वह धातु स्वयं रोशनी के सात रंगों में से एक खास रंग को हजम कर लेता है, जिससे हम फिर छः ही रंग देख सकते हैं और सातवें अदृष्ट रंग के स्थान पर एक काली लकीर दिखाई देती है।"

बात तो ठीक कही लेखक महोदय ने किन्तु ऊपर से इतनी आसान सी दिखने वाली बात कि धातु पर प्रकाश डालें और वह अपनी मर्जी का एक रंग हजम कर ले बाकी छः को बाहर आने दे, इतनी आसान है नहीं। आप ही बताइये, लोहे की एक पट्टी पर यदि हम साधारण प्रकाश को डालें तो क्या हमें इस घटना के दर्शन होंगे? तो फिर क्या लेखक महोदय ने यह असत्य लिखा? ऐसा भी नहीं है। वास्तव में लेखक ने एक जटिल विषय, जो कि उचित विस्तार की माँग करता है, को साधारण शब्दों में बहुत ही लापरवाही के साथ उठाकर रख दिया है, इससे जिज्ञासु पाठकों के हृदय में विज्ञान के सिद्धान्तों को लेकर संशय पैदा हो सकता है।

कुल मिलाकर यह लेख स्तरीय नहीं है और सामान्य जिज्ञासु–पाठकों के लिए अनायास भ्रम पैदा करने वाला है। फिर भी इस लेख मं दो–एक बातें काम की है जिससे पृथ्वी की उत्पत्ति विषयक प्रचलित मतों की जानकारी मिल सकती है।

आकाश का नीला रंग

लेख सं. 11

–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

नागरी प्रचारिण पत्रिका, आषाढ़–श्रावण

1976 विक्रमी या 1919 ई.

लेख के बारे में

यह लेख विषय के विवेचन और भाषा के गठन दोनों ही दृष्टियों से सर्वोष्कृष्ट है। लेख में दी गई जानकारियाँ व्यवस्थित प्रामाणिक और सामान्य–बोध–सम्मत होने के कारण सामान्य तथा विशेष दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत है लेख से उद्धृत एक नमूना–

"अब हम कह सकते हैं कि आकाश का जो नीला रंग दिखाई पड़ता है वह अवश्य प्रत्यावर्तित आलोक तरंगों के कारण है। इन आलोक तरंगों को प्रत्यावर्तित करने वाला पदार्थ है क्या? वायुमंडल, जो पृथ्वी को चारों ओर से लपेटे है। सूर्य की किरणें इस वायुमंडल पर पड़ती हुई आती हैं। यह वायुमंडल ऊपर लाल, पीले, नारंगी आदि रंगों के तरंगों को प्रत्यावर्तित करता है जिससे ऊपर ताकने से आसमानी रंग दिखाई पड़ता है। x x x सारांश यह है कि आकाश के रंग का कारण है वायुमंडल। यदि वायुमंडल हटा दिया जाये तो न आकाश का नीला रंग रह जाएगा न संध्या सबेरे सुन्दर अरुण आभा ही का दर्शन होगा।"

इस लेख की सबसे बड़ी विशेषता इसकी विचारोत्तेजकता है। जिज्ञासु पाठकों के लिए लेख पढ़ने के बाद विषय से उठे प्रश्नों का उत्तर इसी लेख में कहीं न कहीं छिपा मिलेगा, हालांकि यह कतई आवश्यक नहीं कि उत्तर स्पष्ट रूप से लिखा मिलेगा, ढूँढ़ना पड़ेगा, तथ्यों को समेट कर निष्कर्ष निकालना पड़ेगा पर उत्तर मिल अवश्य जायेगा, इस अर्थ में लेख का स्वरूप तथा ढांचा वैज्ञानिक है। लेख के स्वरूप और ढाँचागत वैज्ञानिकता सम्बन्धी एक विवेचन–

अभी–अभी जो लेखांश ऊपर उद्धृत किया गया उसकी अंतिम दो पंक्तियाँ इस लेख की अंतिम पंक्तियाँ हैं और उनमें लेखक ने एक तथ्य पाठकों के समक्ष रखा कि "आकाश के रंग का कारण है वायुमंडल। यदि वायुमंडल हटा दिया जाये तो न आकाश का नीला रंग रह जाएगा न ..... " जिज्ञासु पाठकों के मन में यह प्रश्न उठेगा कि वायुमंडल हटा देने पर आकाश का रंग कैसा दिखेगा? उत्तर है, काला लेकिन शुक्ल जी ने कहीं इसका सीधा उत्तर नहीं दिया अपितु परोक्ष रूप से इस उत्तर का संकेत लेख में अवश्य छोड़ दिया है। देखिये–

"अक्षर काले इसलिए दिखाई पड़ते हैं कि वे प्रायः सब प्रकार के तरंगों को अपने में लीन कर लेते हैं, प्रत्यावर्तित होने के लिए एक को भी नहीं छोड़ते।"

इन पंक्तियों को ऊपर उठाये गये प्रश्न ओर उससे भी ऊपर लेख से उद्धृत तथ्य से जोड़कर पढ़ा जाये तो प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से मिल जायेगा। वायुमंडल नहीं रहेगा तो आलोक तरंग को प्रत्यावर्तित करने वाले कण भी नहीं रहेंगे और प्रत्यावर्तित प्रकाश जब हम तक नहीं पहुँचेगा तो स्पष्ट है कि आकाश का रंग काला ही दीख पड़ेगा।

आकाश का रंग नीला है इस बात को दिखाने के लिए आचार्य शुक्ल ने क्रम से– पहले, आलोक तरंगों की सूक्ष्मता (इस सन्दर्भ में मूल लेख में शुक्ल जी

ने सूची भी दी है) फिर आलोक तरंगों के प्रत्यावर्तन तथा अंत में आलोक तरंगों के अवशोषण की बात की है, जिससे विषय को समझने में 'सुभीता' हो सके।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि यह लेख पाठकों के लिए महत्वपूर्ण तो है ही हिन्दीमाध्यम में विज्ञान लेखन करने वाले नवोदित लेखकों के लिए भी प्रारूप के स्तर से आदर्श और प्रेरणाप्रद है।

इन ग्यारह लेखों के विवेचन से दो महत्वपूर्ण बातें खुलकर सामने आती हैं। एक तो यह कि हिन्दीसाहित्य से जुड़े हुए लोग जैसे चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', रायदेवी प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विज्ञान की सामान्य समझ, व्यावहारिक पक्ष और सामाजिक महत्व वाले विषयों यथा–आँख (लेख सं. 3–'गुलेरी' जी), निद्रा रहस्य (लेख सं. 6–'रामचन्द्र शुक्ल') पर लिखते हुए विज्ञान के लोकप्रियकरण में प्रवृत्त थे जबकि विज्ञान के लोग विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्षों यथा गुरूत्वाकर्षण शक्ति (लेख सं. 3–'शुकदेव प्रसाद तिवारी)', पदार्थ और शक्ति (लेख सं. 7– चंद्रशेखर वाजपयी), लल्लू तिवारी और बिजली से बातचीत (लेख सं. 8 – 'गंगा प्रसाद वाजपेयी', बी.एस.सी.) या सूर्य शक्ति (लेख सं. 9– 'महेश चरण सिंह', एम.एस.सी.) आदि विषयों पर स्वयं को अधिक रमा रहे थे। कुछेक लेखक जैसे महेन्दुलाल गर्ग आदि विज्ञान के दोंनो ही पक्षों (व्यावहारिक और सैद्धान्तिक) पर समान अधिकार के साथ लिख रहे थे। वास्तव में महेन्दुलाल गर्ग द्विवेदी युग के बहुचर्चित विज्ञान लेखकों में से एक रहे हैं। इनके कई लेख 'सरस्वती' से लेकर 'विज्ञान' आदि अनेक उस समय की महत्वपूर्ण हिंदी–विज्ञान की पत्रिकाओं में छपते रहे हैं।

दूसरी बात यह है कि विज्ञान–विषयक विवेचन को लेकर हिन्दीसाहित्य वालों की भाषा के प्रयोग में भी बड़ी भारी भिन्नता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए देखिए गुलेरी जी के लेख (सं. 2) आँख और रामचन्द्र शुक्ल के लेख (सं. – 6) निद्रा रहस्य या आकाश का नीला रंग (लेख सं.11) की भाषा के नमूने। एक ओर जहां शुक्ल जी की भाषा शुद्ध रूप से हिन्दीके अनुरूप थी वहीं अन्य लेखकों में यह केवल हिन्दीपन लिये हुए थी। ढाँचा से लेकर पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग बहुत कुछ या तो संस्कृत के ढर्रे पर था या फिर अंग्रेज़ी के।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दो बातों और कुछेक बातें जिनकी चर्चा इस अध्याय के आरम्भ में की गई है के सामूहिक प्रभाव के कारण हिन्दीमें

विज्ञान लेखन की प्रक्रिया में अन्दर ही अन्दर एक द्वन्द्व तथा तनाव का विकास होना बहुत ही स्वाभाविक था और आज हम सभी, हिन्दीपाठक इस तनाव के शिकार हैं। विज्ञान के प्रति हमारी सामान्य दिलचस्पी का अभाव इसी तनाव का प्रतिफल है। हिन्दीमें विज्ञान लेखन सम्बन्धी यह तनाव और इसके फलस्वरूप हुए विभाजन ('हिन्दी साहित्य में विज्ञान' तथा 'हिन्दीमें विज्ञान साहित्य') की विडम्बना यह है कि आज हिन्दी भाषा में विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ भी थोड़ा–बहुत लिखा–छापा जाता है उसे न तो हिन्दी वाले पढ़ते हैं और न ही विज्ञान वाले।

उपसंहार

उपसंहार

अंग्रेजी राज में जिन भारतीयों का पढ़ाई–लिखाई से वास्ता रहा है उनमें से अधिकांश लोग किसी न किसी रूप में ब्रिटिश शासन से जुड़े हुए थे। यह जितना स्वाभाविक था उतना ही आवश्यक भी था, अन्यथा आज भारत में शिक्षा की क्या स्थिति होती इसका हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। उन्नीसवीं सदी तक आते–आते ब्रिटिश राजसत्ता यह जान चुकी थी कि उन्हें यदि कुछ और वर्षों तक अभी भारत पर राज करना है तो यहां के भद्र पुरुषों, जो अंग्रेजी शिक्षा से लैस थे, को शासन में शामिल करना चाहिए जिससे वे हमारी बातों/नीतियों को आम जनता तक उनकी ही भाषा में पहुँचा सकें। इसके लिए सबसे पहले तो उन्होंने भारतीय–ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों को आदर–सत्कार या कह लें अहमियत देना सीखा होगा क्योंकि यही एक मात्र तरीका था जिससे उससमय के बुद्धिजीवियों/समाजसुधारकों को वे तुष्ट करते हुए अपनी बात कर सकते थे अन्यथा हम सभी जानते हैं कि अंग्रेज़ यहां आये और सबसे पहले उन्होंने भारत को मदारियों और भिखारियों के देश के रूप में प्रक्षिप्त करने का प्रयास किया और दोनों ही विशेषणों 'मदारियों' और 'भिखारियों' में ज्ञान–विज्ञान की हीनता की बात को गहरे अर्थों में शामिल किया गया। यही वो हथियार था जिसकी मदद से सफेद चमड़ी वालों ने भारतीयों के मनोबल दबाये रखा।

अपने शासन को जायज ठहराने के लिए उन्हें (अंग्रेज़ों को) सबसे पहले पूर्व–औपनिवेशिक काल के कई संरचनागत विधाओं यथा ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों आदि को नाजायज और अनर्गल ठहराने के छल करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए अंग्रेजों ने भारतीयों को अवैज्ञानिक सोच–समझ वाले, अन्धविश्वासी तथा 'परिवर्तन–विमुख' घोषित किया और इनकी पहचान में 'मदारियों और भिखारियों' वाले जुमले गढ़े गये। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि

भारतीयों के मन में अपने ही ज्ञान–विज्ञान के प्रति संशयग्रस्त हीनता का भाव आता चला गया और वे अपनी ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों से दूर होते चले गये, परिणाम यह हुआ कि अपनी भाषा (मातृ भाषा) में ज्ञान–विज्ञान के सृजन की नई संभावनाओं पर पहरा लग गया। मैकॉले की शिक्षा नीति (1833 ई.) ने इन सारी परिस्थितियों में उत्प्रेरक का काम किया। निजभाषा में ज्ञान–विज्ञान के विमर्श को धक्का पहुँचने से प्रत्यक्ष रूप से निजभाषा के विकास को धक्का पहुँचा।

और फिर जैसा कि हमेशा ही होता है कि समस्याएं अपने साथ अपना समाधान भी लेकर आती है, भारतीय भाषाओं में नये ज्ञान–विज्ञान की पद्धतियों के विकास की आवश्यकता स्वयं अंग्रेजों को ही महसूस होने लगी क्योंकि अब वे भारतीयों की अपनी हर प्रकार की अस्मिता की रक्षा, चाहे भाषाई हो, चाहे सांस्कृतिक हो या राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक कुछ भी, के लिये तड़प और संघर्ष को और अधिक उपेक्षित नहीं कर सकते थे। मैकॉले की शिक्षा नीति ने पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, सामाजिक मूल्यों, लोकतंत्रात्मक शासन पद्धतियों, मानवाधिकारों के प्रति सजगता और शोषण के प्रति संघर्ष के नये पाठ भारतीयों तक पहुँचाने में, अनचाहे और अनजाने रूप से, भरपूर मदद की। व्यापक स्तर पर भारतीय नवजागरण का स्वर मुखरित हो उठा। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में भी उन्नीसवीं सदी के ढलते–ढलते इसकी गूँज चहुँदिश फैलने लगी। हिन्दीभाषा का स्वरूप नये ज्ञान–विज्ञान के संगठन के लिए तैयार होने लगा। 'हिन्दीनई चाल में ढलने लगी'। हिन्दीगद्य का विकास इस अर्थ में एक क्रांतिकारी घटना मानी जाती है। भारतेंदु, उनके सहयोगी और कुछ अन्य प्रबुद्ध जन पूरे परिश्रम और दूरदर्शिता के साथ इस दिशा में सक्रिय हो गये।

भारतेंदु द्वारा दिया गया 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' के मूल मंत्र को आगे के साहित्य के सिपाहियों ने गाँठ बाँध लिया और पूरी कर्मठता के साथ साहित्य की ज्ञान राशि के निर्माण में सक्रिय हो उठे। इस पूरे क्रियाकलाप के सूत्रधार के रूप में व्यक्ति के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद

द्विवेदी और उनके सहयोगियों तथा संस्था के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा पत्रिका के रूप में 'सरस्वती' का नाम बिना किसी हिचक के तथा पूरे सम्मान के साथ हमेशा लिया जाता रहेगा।

द्विवेदी युग में हिन्दी की ज्ञान राशि का समुचित विस्तार हुआ। न सिर्फ विस्तार हुआ बल्कि इस विस्तार का जन साधारण में खूब प्रचार–प्रसार भी हुआ। इस सन्दर्भ में 'सरस्वती' की भूमिका तथा स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के योगदानों की एक संक्षिप्त चर्चा हम दूसरे अध्याय में कर आये हैं। और अन्यत्र भी 'सरस्वती' तथा द्विवेदी जी पर इस विषय पर अनेक शोधार्थियों द्वारा किये गये शोध इस पर विधिवत् प्रकाश डालते हैं। इस प्रसंग में मैं जिस एक शोध का नाम लेना चाहूँगा वह –श्री हर प्रकाश गौड़ द्वारा किया गया शोध – 'सरस्वती' और राष्ट्रीय जागरण' (1981 में पी.एच.डी. की उपाधि हेतु, भारतीय भाषा केन्द्र, जे.एन.यू. में जमा) तथा 'सरस्वती और राष्ट्रीय आन्दोलन' (1978 में एम.फिल. की उपाधि हेतु, भारतीय भाषा केन्द्र, जे.एन.यू. में जमा) है।

द्विवेदी युग में हिन्दीसाहित्य में विज्ञान सम्बन्धी विवेचन का जो विपुल भण्डार मिलता है, वह महावीर प्रसार द्विवेदी की साहित्य सम्बन्धी अवधारणा, जिसमें उनका मानना है, साहित्य–ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम है, का ही एक तरह से प्रतिरूपण है। ज्ञान राशि के संचित कोश' का दायरा इतना बड़ा है कि उसमें विज्ञान समेत ज्ञान की अनेक शाखाओं का समायोजन हो सकता है और हुआ भी। द्विवेदी युगीन साहित्य इसी वजह से केवल कविता, कहानी और उपन्यास तक नहीं सिमटा रहा। अनुभव करने की बात है कि किस तरह द्विवेदी युग के कवियों/कहानीकारों ने विज्ञान जैसे लगभग विजातीय (कम से कम उनके लिये) विषय पर सप्रयास अपनी पकड़ बनाते हुए उसे भी हिन्दीसाहित्य के दायरे में घसीट कर न सिर्फ हिन्दी का बल्कि हिन्दी वालों का भी उद्धार करना चाहा। जबकि आगे के युग में ऐसे भी सहित्यकार हुए हैं जो वैज्ञानिक

पृष्ठभूमि से होते हुए भी हिन्दी साहित्य में अपनी कलम से विज्ञान लेखन का एक उदाहरण भी प्रस्तुत ना कर सके।

प्रयोगवाद में प्रयोग शब्द से जिस वैज्ञानिकता की सुगन्ध आनी चाहिए, कहना चाहूँगा इस संदर्भ में वह अनुपस्थित है। अज्ञेय, इस युग के प्रमुख साहित्यकार रहे और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि से भी रहे किन्तु कोई बता दे हिन्दीमें उन्होंने विज्ञान, चाहे सामाजिक विज्ञान या प्राकृतिक विज्ञान, पर कितना और क्या लिखा?

अंत में मैं आज के हिन्दी साहित्य सेवियों से निवेदनपूर्वक यह कहना चाहूँगा कि साहित्य की द्विवेदी युगीन अवधारणा जिसमें उसे ज्ञान–राशि का संचित कोश माना गया, को साहित्य के व्यापक हित के लिए अपने चित्त में उतारने का प्रयास करें और इस प्रसंग में विशेष तौर पर हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य के संदर्भ में इस शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट में तथा अन्यत्र भी जो भी पुस्तकें/पत्रिकायें/लेख आदि समाग्रियों की जानकारी उपलब्ध कराई जा सकी है, के संग्रह और पुनर्प्रकाशन की दिशा में ठोस कदम बढ़ाने का प्रयास करें नहीं तो कुछ मूढ़मतियों द्वारा पूर्वग्रह पूर्ण, बेबुनियादी तौर पर आँख–मूँदकर लगाये गये आरोप कि हिन्दी में विज्ञान पर कहाँ–कुछ लिखा गया? हिन्दीमें वैज्ञानिकता के भार वहन के लिए समर्थ भाषा ही नहीं है, या, फिर हिन्दी नवजागरण के साहित्यकार केवल वेदों, उपनिषदों का गान ही कर रहे थे आदि का प्रमाण रहते हुए भी, खण्डन करना दुष्कर होगा।

मेरे इस लघु शोध का उद्देश्य भी वस्तुतः यही रहा कि विज्ञान से जुड़ी सामग्रियों को हिन्दी के पुरातन भण्डार से खोजकर निकाला जाये और आज के हिन्दी सेवियों के सम्मुख रखा जाये जिससे हमें हिन्दी में विज्ञान लेखन की परम्परा, विकास और संक्षिप्त इतिहास की एक झलक मिल सके और अंग्रेजी वालों तथा कई हिन्दी वालों द्वारा हिन्दीके जन्मजात पिछड़ेपन के आरोप की असत्यता, और निरर्थकता खुलकर सामने आ सके।

मेरा ऐसा मानना है कि कदाचित् मेरे इस लघु शोध प्रबन्ध में हिंदी साहित्य में विज्ञान लेखन सम्बन्धी सूचनाओं विशेषकर हिन्दीनवजागरण काल (भारतेंदु युग) में विज्ञान लेखन सम्बन्धी खोजकर एकत्रित की गई जानकारियों के माध्यम से हिन्दीनवजागरण के सम्बन्ध में कुछ दकियानूसी दृष्टिकोणों की पुनर्परीक्षा के स्रोत खुलेंगे।

आगे एक प्रश्न के साथ मैं अपनी बात फिलहाल समाप्त करना चाहता हूँ– भारतेंदु युग में ज्ञान–विज्ञान के साहित्य निर्माण के प्रयासों के मद्देनजर क्या अभी भी हिन्दी नवजागरण जैसी किसी महत्वपूर्ण घटना के अस्तित्व को नकारने या फिर हिचकिचाते हुए स्वीकार करके उसे केवल हिंदू नवजागरण मानने का अविवेकपूर्ण हठ और पूर्वग्रह उचित ठहराया जाता रहेगा? यह सब देखकर –

प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने इस संदर्भ में ऐसे बुद्धिजीवियों के सम्मान में दो टूक शब्दों में बड़ी मार्के की टिप्पणी की है। वे लिखते हैं–

"शिक्षित समाज में अपने ज्ञान पर भी गर्व करना अच्छा नहीं समझा जाता है, लेकिन आजकल हिन्दी में ऐसे बुद्धिजीवी हैं जो अपने अज्ञान पर भी गर्व करते दिखाई देते हैं।"[1]

---

[1] डॉ. मैनेजर पाण्डेय– 'आचार्च रामचन्द्र शुक्ल और विकासवाद' (लेख), 'नया मानदण्ड' : अंक 31 (जनवरी–मार्च 2004), पृष्ठ 39,

परिशिष्ट एक

भारतेन्दु युग में वैज्ञानिक लेखों पुस्तकों की सूची

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

परिशिष्ट एक

"भारतेन्दु युग में वैज्ञानिक लेखों/पुस्तकों की सूची; लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित"

स्रोत : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्राप्त आर्यभाषा पुस्तकालय के सूचीपत्र का प्रथम खण्ड (संवत् 2001 विक्रमी)

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

मूल पुस्तक सूची में पृष्ठ 255–256 पर देखें, '530' के अन्तर्गत

क्र. स.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम (विषय)	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वंशीधर	सिद्ध पदार्थ विज्ञान अनुवादकः मोहनलाल पंडित	सरकारी पुस्तकालय, आगरा	1853 ई.
2.	मथुरादास	प्रश्नोत्तर जड़तत्व विज्ञान 1 जड़तत्व विज्ञान 2	ग्रन्थकार, मिल्टरी वर्क्स, फिरोज़पुर "	1887 ई. "
3.	लक्ष्मी शंकर मिश्र	वायुचक्र विज्ञान भाग1 भाग 2	ग्रन्थकार बनारस, कॉलेज	1874 ई. "
4	विनायक राव	संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान विटप	चन्द्रप्रभा प्रेस , बनारस	1884 ई.
5.	वैलेन्टाइन	वायु सागर	ग्रन्थकार, जयपुर	1867 ई.

रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा प्राणिशास्त्र पर पुस्तकें

पुस्तकों के नाम के आगे उनके विषय संक्षेपाक्षरों में लिख दिये गये हैं। जैसे रसायन के लिए (रसा.), भूगर्भ शास्त्र के लिए (भूग) आदि. मूल सूची में पृष्ठ 256,257,258,259 पर देखें '540' के अन्तर्गत

क्र. स.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम (विषय)	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	वैलेंटाइन	सुलभ रसायन संक्षेप (रसा.)	.....	1856 ई.
2.	विश्वंभरनाथ शर्मा	रसायन संग्रह (रसा.)	ग्रन्थकार, 66/4 क्रॉसस्ट्रीट कोलकाता	1896 ई.
3.	हरिशरणानन्द वैद्य	रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर	आगरा स्कूल बुक सोसायटी	1847 ई.
4.	गुरुदासजी	रत्नपरीक्षा (भूग)	वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई	1896ई. (1953 वि.)
5.	एडवर्ड अनुवादकः विनायक राव	संसार की बाल्यावस्था (भूग.)	मेडिकल हाल प्रेस, काशी	1882 ई.
6.	अलेक्जेंडर जे. डब्लू	बॉटनी (वनस्पति)	मेयो कालेज, अजमेर	1880 ई

7.	योग्ध्यान मिश्र	पंचावली दूसरा अंक (प्राणि)	सारसुधा यंत्र कलकत्ता	1895 वि.
8.	शेरिंग, एम. ए.	जन्तु प्रबन्ध (प्राणि)	आरफन प्रेस, मिर्जापुर	1864 ई.
9.	सालिग राम वर्मा गोपाल स्वरूप भार्गव	वनपशुओं की चित्रकला मछली नामा तथा सर्पनामा	क्रि.लि.सो. इलाहाबाद	1895 ई. ,,

गणित पर पुस्तकें

अंक गणित की पुस्तकों के आगे (अंक), बीजगणित की पुस्तकों के आगे (बीज) और रेखा गणित की पुस्तकों के आगे (रेखा) लिखा है। मूल सूची में देखें पृष्ठ 242–243।

क्र. स.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम (विषय)	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	अली अकबर खाँ	किताब क्यूबिक फुट	ग्रन्थकार, मालगुजार धनवाही	1897 ई.
2.	ईश्वरी प्रसाद	गणित क्रिया के चौथे भाग का हल	कल्याण राय, मुदर्रिस नार्मल स्कूल, मेरठ	1885 ई.
3.	उमराव सिंह	गणित प्रदीप भाग 1	चिंतामणि बुकसेलर, फर्रूखाबाद	1888 ई.
4	उमराव सिंह	हिसाब मिडिल क्लास	”	”
5.	उल्फत राय	गणित विनोद	ग्रन्थकार हमीरपुर	1885 ई.
6.	कल्याण राय	गणित क्रिया भाग 1 भाग 2 भाग 3	ग्रन्थकार नार्मल स्कूल, मेरठ ” ”	1886ई. ” ”
7.	काशी प्रसाद	गणितराज भाग 1	ग्रन्थकार, जौनपुर	1887ई.

8.	चन्दी सिंह	जिह्वाग्र गणित भाग 3	मेथोडिस्ट पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ	1892 ई.
9.	चक्रवर्ती यादव चन्द्र	अंकगणित भाग 1	पी.सी. द्वादश श्रेणी एंडको. अली गढ़	1900ई.
10.	चक्रवर्ती वीरेश्वर	गणित गुरु भाग 1	चक्रवर्ती वीरेश्वर बी.एल. चक्रवर्ती 8, डिस्कनसन लेन, कलकत्ता	1886ई.
11.	चिंतामणि	आरम्भ गणित	ग्रन्थकार फ़र्रूखाबाद	1889ई.
12.	त्रिलोकीनाथ सिंह	भुवनेश यन्त्र प्रकाश	ग्रन्थकारऑनरेरी मजिस्ट्रेट, अयोध्या	1895 ई (1952वि.)
13.	पाली राम पाठक	पाटी गणित भाग 1	ग्रन्थकार नार्मल स्कूल, मेरठ	1874 ई.
14.	बापूदेव शास्त्री	व्यक्त गणित भाग 1 भाग 2	मेडिकल हाल प्रेस, बनारस	1875 ई.
15.	मनराखन लाल	गणित रामायण प्रथम खण्ड	प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ	1900ई.
16.	मुन्नीलाल	गणित विज्ञान	ग्रंथकार, मुदर्रिस तहसीली सराय, मीरागंज,	1888ई.

			फर्रूखाबाद	
17.	लक्ष्मीशंकर	गणित कौमुदी भाग 1 भाग 2	गोपीनाथ पाठक, बनारस लाईट प्रेस चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस	1868 ई. 1895 ई. "
18.	वंशीधर पण्डित	दशलमव दीपिका	गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद	1881 ई.
19.	बृजमोहन लाल	गणित तरंगिणी भाग 1	ग्रन्थकार सीताराम, एटा	1886 ई.
20.	श्री नारायण	गणित गुरु प्रकाशिका	न्यू मेडिकल हाल, प्रेस, बनारस	1880 ई.
21.	साहब प्रसाद सिंह	गुरु गणित शतक भाग 1	बिहार बंधु छापाखाना, बाँकीपुर	1879 ई.
22.	"	" भाग 2	खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर	1883 ई.
23.	हरिऔध (अयोध्या	अंकगणित	"	1896 ई.
24.	हेरंबगिरि गोसाईं	ब्याज की पुस्तक अरिथमेटिक भाग 5	..... महकमा सरिश्ते तालीम, अवध	1872 ई.
25.	"	लोवर प्राइमरी गणित	चंद्रप्रभा प्रेस, काशी	1883 ई.
26.	कुंल	सुलभ बीजगणित	गवर्नमेन्ट प्रेस, प्रयाग	1875 ई.

	बिहारीलाल			
27.	बापूदेव शास्त्री	बीजगणित	मेडिकल हाल, प्रेस, बनारस	1875 ई.
28.	भट्टाचार्य, आदित्यराम	बीजगणित	गवर्नमेन्ट प्रेस इलाहाबाद	1874 ई.
29.	मोहनलाल पंडित	हिन्दी बीजगणित भाग 2	मेडिकल हाल, प्रेस, बनारस	1859 ई.
30.	रामेश्वर प्रसाद	मिडिल क्लास बीजगणित	नागरी प्रेस, इलाहाबाद	1886 ई.
31.	आत्माराम	रेखागणित प्रश्न कौमुदी पहला अध्याय	झुन्नीलाल फर्रूखाबाद	1884 ई.
32.	उमराव सिंह	मसाहत मिडिल क्लास भाग 1	चिन्तामणि यंत्रालय फर्रूखाबाद	1890 ई.
33.	”	” भाग 3	”	1876 ई.
34.	”	रेखागणित सिद्धान्त चन्द्रोदय	”	1876 ई.
35.	कुंज बिहारीलाल	रेखामिति तत्व	सिकन्दर के छापाखाना, आगरा	1854 ई.
36.	गूदर सहाय	रेखागणित अध्याय 5	खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर	1895 ई.
37.	दीनदयाल शुक्ल	रेखागणित तत्व दर्पण	ग्रन्थकार, गवर्नमेन्ट हाई स्कूल फर्रूखाबाद	1882 ई.

38.	पिंडीशंकर	रेखागणित	”	1875 ई.
38.	मोहनलाल पंडित	रेखागणित भाग 1	मेडिकल हाल प्रेस, काशी	1858 ई.
39.	विनायक राव	व्यावहारिक रेखागणित	गवर्नमेंट सेन्ट्रल बुक डिपो, नागपुर	1888 ई.
40.	सदानन्द मिश्र	रेखागणित बुक 1	जीवानन्द विद्यासागर संस्कृत कालेज कलकत्ता	1874 ई.

परिशिष्ट दो

द्विवेदी युग वैज्ञानिक लेखों की सूची 'सरस्वती' के सन्दर्भ में

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित)

सन् 1900 ई. से लेकर 1920 ई. के बीच सरस्वती के विभिन्न अंकों में छपे लेखों की सूची। लेखों को प्रकाशन वर्ष के बढ़ते क्रम में सजाया गया है। कई लेख ऐसे भी मिले हैं जिनके लेखक का नाम नहीं दिया गया है, 'लेखक का नाम' – शीर्षक के नीचे उनके आगे– का चिन्ह लगाया गया है। ऐसे लेख सम्पादक महोदय द्वारा प्रणीत माने जा सकते हैं।

'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित वैज्ञानिक लेखों की सूची

क्र.स.	लेख का शीर्षक	लेखक का नाम	माह/वर्ष (सन्)
1.	जन्तुओं की सृष्टि	–	फरवरी 1900 ई.
2.	फोटोग्राफी	–	फरवरी 1900 ई.
3.	जन्तुओं की सृष्टि	–	मार्च 1900 ई.
4.	”	–	अप्रैल 1900 ई.
5.	रेल	–	जून 1900 ई.
6.	चन्द्रलोक की यात्रा	हंसपाल	जून 1900 ई.
7.	मानवी शरीर	–	अक्टूबर 1900 ई.
8.	भारतवर्ष की शिल्प विद्या	–	दिसम्बर 1900 ई.
9.	चन्द्रलोक	बाबू दुर्गा प्रसाद	मार्च 1901 ई.
10.	पलुए जंगली जानवर	कुमार योद्धासिंह मेहता	मई 1901ई.
11.	प्रलय	–	जून 1901 ई.
12.	मोती	ठाकुर प्रसाद	अप्रैल 1902 ई.
13.	मोतियों का गुफा	गोपाल दास	मई–जून 1902 ई.

14.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	नवम्बर 1902 ई.
15.	ब्रह्माण्ड घाटी कौं जंगली जातिया	गोपाल दास	नवम्बर 1901 ई.
16.	हीरा	ठाकुर प्रसाद	दिसम्बर 1902 ई.
17.	गरुड़	–	जनवरी 1903 ई.
18.	ग्रहों पर जीवधरियों के होने का अनुमान	–	जनवरी 1903 ई.
19.	अध्यापक वसु के अद्भुत आविष्कार	–	फरवरी–मार्च 1903 ई
20.	जल–चिकित्सा	–	मई 1903 ई.
21.	विमान और उड़ने वाले मनुष्य	–	मई 1903 ई.
22.	आँख की फोटोग्राफी	–	मई 1903 ई.
23.	जल चिकित्सा	–	जुलाई 1903 ई.
24.	मनुष्येतर जीवों का अन्तर्ज्ञान	–	जुलाई 1903 ई.
25.	जलगामिनी पैरगाड़ी और– तैरने का यंत्र		जुलाई 1903 ई.
26.	गर्भ–संचार	–	जुलाई 1903 ई.
27.	दीप्ति–मण्डल और सूर्याभास	–	अगस्त 1903 ई.

28.	जल–चिकित्सा	–	अगस्त 1903 ई.
29.	गर्भ के आकार और परिणाम	–	अगस्त 1903 ई.
30.	महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री सी. आई. ई.	पं. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	सितम्बर 1903 ई.
31.	पृथ्वी	–	सितम्बर 1903 ई.
32.	कर और सिरमयी मछली	–	अक्टूबर 1903 ई.
33.	ध्वनि	–	नवम्बर 1903 ई.
34.	मारकार लौट आने वाला अस्त्र	–	नवम्बर 1903 ई.
35.	प्रसूति	–	नवम्बर 1903 ई.
36.	कीट ग्राहक पौधा	–	दिसम्बर 1903 ई.
37.	अतुल यंत्र	–	दिसम्बर 1903 ई.
38.	रजो दर्शन	–	दिसम्बर 1903 ई.
39.	शुक्र	–	फरवरी 1904 ई.
40.	वराहमिहिर	पं. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	अप्रैल 1904 ई.
41.	रेडियम	–	अप्रैल 1904 ई.
42.	हमारी देह	–	अप्रैल 1904 ई.
43.	ज्वार भाटा	पं. महेन्दुलाल गर्ग	मई 1904 ई.
44.	कीड़े मकोड़े	पं. श्रीनारायण मिश्र	जून 1904 ई.

45.	विद्युत	बाबू माणिक्यचंन्द्र जैन	जुलाई 1904 ई.
46.	मत्स्याहारी वनस्पति	बाबू यशोदानन्दन अखौरी	अगस्त 1904 ई.
47.	सामुद्रिक सुरंग और समुद्रोदरगामिनी डोंग	–	अगस्त 1904 ई.
48.	पेट की आत्म–कहानी	पं. महन्दुलाल गर्ग	सितम्बर 1904 ई.
49.	किरण, रेडियम और परमाणु	बाबू जीतन सिंह	अक्टूबर 1904 ई.
50.	पौंधे का सांस लेना	पं. सूर्य नारायण दीक्षित	नवम्बर 1904 ई.
51.	नेपल्स की कासानोवा नाम औद्योगिकशाला	माधवराव सप्रे	दिसम्बर 1904 ई.
52.	विस्यूवियस	–	जनवरी 1905 ई.
53.	आँख	पं. चन्द्रधर 'गुलेरी'	फरवरी 1905 ई.
54.	तार द्वारा खबर भेजने का यंत्र	–	मार्च 1905 ई.
55.	कुण्डलिनी	–	मार्च 1905 ई.
56.	पौंधों में रस प्रवाह	पं. सूर्यनाराण दीक्षित	मार्च 1905 ई.
57.	आँख	पं. चंद्रधर 'गुलेरी'	मार्च 1905 ई.
58.	सृष्टि विचार	–	मई 1905 ई.
59.	कस्तूरी मृग	–	मई 1905 ई.
60.	आकाश मण्डल	जीतन सिंह	मई 1905 ई.

61.	सवाई जयसिंह	–	मई 1905 ई.
62.	आँख	पं. चन्द्रधर 'गुलेरी'	मई 1905 ई.
63.	भूकम्प	माणिक्य चन्द्र जैन	जून 1905 ई.
64.	आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण	–	जून 1905 ई.
65.	आँख	पं. चन्द्रधर 'गुलेरी'	जून 1905 ई.
66.	पौधों की नींद	सूर्यनारायण दीक्षित	जुलाई 1905 ई.
67.	फोटोग्राफी के उपयोग	रामदुलारी दुबे	जुलाई 1905 ई.
68.	आँख	पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	अगस्त 1905 ई.
69.	व्योम विहार	–	सितम्बर 1905 ई.
70.	पत्थरका एक अद्‌भुत गोला	पं. देवी प्रसाद शुक्ल	सितम्बर 1905 ई.
71.	हिम स्फटिक	सरयू नारायण त्रिपाठी	सितम्बर 1905 ई.
72.	प्रपंच	गवीश	सितम्बर 1905 ई.
73.	मार्तण्ड महिमा	–	अक्टूबर 1905 ई.
74.	सबसे बड़ा हीरा	–	अक्टूबर 1905 ई.
75.	वानस्पति संज्ञानता	सूर्य नारायण दीक्षित	अक्टूबर 1905 ई.
76.	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	शुकदेव प्रसाद तिवारी	अप्रैल 1906 ई.
77.	कृत्रिम हीरा	गिरजा दत्त वाजपेयी	मई 1906 ई.
78.	क्या जानवरी भी	–	मई 1906 ई.

	सोचते हैं ?		
79.	विवीसेक्शन	महेन्दुलाल गर्ग	मई 1906 ई.
80.	प्रकाश	लक्ष्मीधर वाजपेयी	जनवरी 1907 ई.
81.	वानस्पति विद्या में अद्‌भुत चमत्कार	गिरजा दत्त वाजपेयी	जनवरी 1907 ई.
82.	ज्योतिष वेदांग	पर्य्यालोचक	फरवरी 1907 ई.
83.	सम चिकित्सा चमत्कार	रायदेवी प्रसाद	मार्च 1907 ई.
84.	बिजली की रेलगाड़ी	सत्यदेव	अप्रैल 1907 ई.
85.	मानव जाति के उन्नायक सिद्धान्त	रामजी लाल शर्मा	अप्रैल 1907 ई.
86.	प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता	सत्यदेव	मई 1907 ई.
87.	रायबहादुर पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र	रामनारायण सिंह	जून 1907 ई.
88.	रेडियम	सरयू नाराण त्रिपाठी	अगस्त 1907 ई.
89.	पराग मिश्रण	गंगाशंकर पाचौली	अगस्त 1907 ई.
90.	बिजली का बाजा	सूर्य नारायण दीक्षित	सितम्बर 1907 ई.
91.	गेहूँ से रबड़	लक्ष्मण गोविन्द आठले	सितम्बर 1907 ई.
92.	आत्मा का अमरत्व	माधव राव सप्रे	नवम्बर 1907 ई.
93.	किरण–विकिरण	जगन्नाथ प्रसाद वर्मा	दिसम्बर 1907 ई.

94.	कृषि विज्ञान में अद्‌भुत आविष्कार	महावीर प्रसाद द्विवेदी	मार्च 1908 ई.
95.	मंगल के चित्र	महावीरप्रसाद द्विवेदी	मार्च 1908 ई.
96.	शब्द और प्रकाश की चाल	राय देवी प्रसाद	अप्रैल 1908 ई.
97.	पौधें की बाढ़	पं. सूर्यनाराण दीक्षित	अप्रैल 1908 ई.
98.	सोमलता	–	मई 1908 ई.
99.	प्लेग–तत्व	महेन्दु लाल गर्ग	मई 1908 ई.
100.	हमारा वैद्यक शास्त्र	पं. लक्षमीधर वाजपेयी	मई 1908 ई.
101.	लार्ड केलविन	उदयनारायण वाजपेयी	मई 1908 ई.
102.	शरीर के भीतरी भागों का फोटो	पं. गिरजा दत्त वाजपेयी	जून 1908 ई.
103.	अध्यापक वसु के नूतन आविष्कार	उदयनारायण वाजपेयी	जून 1908 ई.
104.	प्राकृतिक दुर्घटना सूचक पौधा	महावीर प्रसाद द्विवेदी	जून 1908 ई.
105.	रोगोत्पाद जन्तु, विज्ञान	डॉ. मुरलीधर	सितम्बर 1908 ई.
106.	योगाभ्यास की शक्ति	लाला मुंशीलाल	सितम्बर 1908 ई.
107.	रक्त भ्रमण	पं. महेन्दु लाल गर्ग	अक्टूबर 1908 ई.
108.	बरबैंक साहब के नूतन आविष्कार	–	अक्टूबर 1908 ई.
109.	मलेरिया	पं. लल्ली प्रसाद पाण्डेय	नवम्बर 1908 ई.

110.	पुनर्जन्म	–	नवम्बर 1908 ई.
111.	जलरूपी वायु	सरयू नारायण त्रिपाठी	जनवरी 1910 ई.
112.	मानव रहस्य	महेन्दुलाल गर्ग	जनवरी 1910 ई.
113.	पुच्छल तारा	सरयू नारायण त्रिपाठी	मार्च 1910 ई.
114.	एटम	सरयू नाराण त्रिपाठी	अप्रैल 1910 ई.
115.	पक्षी और कृषि	भोला दत्त पाण्डेय	मई 1910 ई.
116.	भोजन की रसायन	महेश चरण सिंह	मई 1910 ई.
117.	खाद और उसका व्यवहार	मोहब्बत सिंह दोनवार	जुलाई 1910 ई.
118.	बिजली	महेश चरण सिंह	अगस्त 1910 ई.
119.	ऑक्सीजन	सरयू नारायण त्रिपाठी	सितम्बर 1910 ई.
120.	श्रीयुत भोला दत्त पाण्डेय	सत्यदेव	अक्टूबर 1910 ई.
121.	दूध से बीमारियाँ	रामनारायण शर्मा	नवम्बर 1910 ई.
122.	जीवधारियों की बनावट	काशी दत्त पाण्डेय	नवम्बर 1910 ई.
123.	मलेरिया के मच्छड़	लल्ली प्रसाद पाण्डेय	फरवरी 1911 ई.
124.	उषा	गिरजा प्रसाद द्विवेदी	मार्च 1911 ई.
125.	गर्मी	गिरधर शर्मा	मार्च 1911 ई.
126.	लिखने के साधन	पाण्डुरंग खानखोजे	अप्रैल 1911 ई.
127.	रक्त विज्ञान	–	अप्रैल 1911 ई.
128.	जल का घनत्व	कृष्ण चन्द गुप्त	मई 1911 ई.

129.	शिशु पोषण	रामनारायण शर्मा	मई 1911 ई.
130.	शाक भोजन और मांस भक्षण	केशव देव	मई 1911 ई.
131.	उल्कापात	उदयनारायण वाजपेयी	जुलाई 1911 ई.
132.	सौर जगत	रघुवर प्रसाद द्विवेदी	सितम्बर 1911 ई.
133.	भूकम्प के लाभ	उमराव सिंह गुप्त	नवम्बर 1911 ई.
134.	पदार्थ विज्ञान का अभ्युदय	अनुवादक बालकृष्ण शर्मा	जनवरी 1912 ई.
135.	ज्योर्तिविद्या	रामावतार शर्मा	जनवरी 1912 ई.
136.	डार्विन का सिद्धान्त	गिरिजादत्त वाजपेयी	जनवरी 1912 ई.
137.	क्या पुनर्जन्म संभव है?	रामनारायण शर्मा	जनवरी 1912 ई.
138.	मारकोनी का माहातम्य	जगन्नाथ खन्ना	फरवीर 1912 ई.
139.	जर्मनी में सुनारी का काम	गुरुदयाल सिंह	फरवरी 1912 ई.
140.	व्योम यानों से गोलों वर्षा	–	फरवरी 1912 ई.
141.	विश्व विज्ञान	भगवान दत्त रूपलाल	अप्रैल 1912 ई.
142.	जनसंख्या की निस्सीम वृद्धि से हानियाँ और उनसे बचने के उपाय	जनार्दन भट्ट	मई 1912 ई.
143.	मनुष्य क्या चीज है	रामनारायण शर्मा	जून 1912 ई.

144.	भूगर्भ विद्या	रामावतार शर्मा	जनवरी 1913
145.	सर आइजक न्यूटन	सरयू नारायण त्रिपाठी	फरवरी 1913 ई.
146.	प्रकृति के अद्‌भुत रहस्य	रामनारायण शर्मा	फरवरी 1913 ई.
147.	पशुओं में बोलने की शकित	--	मार्च 1913 ई.
148.	वनस्पति शास्त्र	नारायण प्रसाद अरोड़ा	अप्रैल 1913 ई.
149.	पनामा की नहर	बद्री नाथ	मई 1913 ई.
150.	परमाणुवाद	गोपाल स्वरूप भार्गव	जुलाई 1913 ई.
151.	सांप काटे का इलाज	रामनारायण शर्मा	जुलाई 1913 ई.
152.	भाष्कराचार्य	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	अगस्त 1913 ई.
153.	कपास	मन्नन द्विवेदीगाजीपुरी	नवम्बर 1913 ई
154.	वनस्पति विचार	नन्द किशोर	नवम्बर 1913 ई.
155.	भावी हवाई युद्ध	आदित्य नारायण सिंह शर्मा	नवम्बर 1913 ई.
.156.	जगत में विज्ञान का विकास	रामावतार शर्मा	जनवरी 1914 ई.
157.	क्षय रोग का कारण और उसका इलाज	बाल कृष्ण शर्मा	मार्च 1914 ई.
158.	मांस खाने वाले पोधे	कर्म नारायण	अप्रैल 1914 ई.
159.	उद्योग धन्धे की शिक्षा की जरूरत	विष्णुदास कोछड़	मई 1914 ई.
160.	स्तनपायी पशुओं में मनुष्य	रामनारायण शर्मा	मई 1914 ई.

	की सर्वश्रेष्ठता		
161.	एक्स किरण	विनायक गणेश साठे	जून 1914 ई.
162.	बेतार की तारबर्की	जगन्नाथ खन्ना	जून 1914 ई.
163.	अमेरिका में कृषि विषयक प्रयोगालय	पाण्डुरंग खानखोजे	जुलाई 1914 ई.
164.	इन्द्रधनुष	गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	जुलाई 1914 ई.
165.	खुजली	मैथली शरण गुप्त	जुलाई 1914 ई.
166.	कोयला	दुर्गा प्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया	जुलाई 1914 ई.
167.	आधुनिक तोपे	–	अक्टूबर 1914
168.	हाइड्रोजन के चमत्कार	रामदास गौड़	नवम्बर 1914 ई.
169.	वृक्षों में जीव	प्रो. बालकृष्ण	दिसम्बर 1914 ई.
170.	हमारे किसान और खेती की कलें	वीरसेन सिंह	दिसम्बर 1914ई.
171.	पदार्थ ओर शक्ति	पं. चद्रशेखर वाजपेयी	दिसम्बर 1914 ई.
172.	जलांतक रोग	नन्द किशोर	फरवरी 1915 ई.
173.	प्रकाशतत्व	–	फरवरी 1915 ई.
174.	कुछ आधुनिक आविष्कार	संपादक	मार्च 1915 ई.
175.	वायुयान	उमराव सिंह विद्यार्थी	मार्च 1915 ई.

176.	प्रकाश का वेग	मुनिलाल स्वामी	अप्रैल 1915 ई.
177.	भास्कराचार्य और लालावती	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	अप्रैल 1915 ई.
178.	क्रम विकास	द्वारिकानाथ मिश्र	मई 1915 ई.
179.	वायु	दुर्गा प्रसाद सिंह श्रीवास्तव	जून 1915 ई.
180.	समुद्र के भीतर तार डालना	संपादक	जून 1915 ई.
181.	मक्खियों से हानि	पद्मनाथ पाण्डेय	जून 1915 ई.
182.	खेती की बुरी दशा	संपादक	जून 1915 ई.
183.	उद्योग धन्धे की शिक्षा	कृष्णानन्द जोशी	जुलाई 1915 ई.
184.	भारतीय किसानों के उद्धार के उपाय	ईश्वर दास मारवाड़ी	अगस्त 1915 ई.
185.	सवितृ मण्डल	जयवन्तराम	सितम्बर 1915 ई.
186.	भारतीय किसान	कृष्णानन्द जोशी	सितम्बर 1915 ई.
187.	आकाश गंगा	श्रीलाल शालग्राम पंडया	अक्टूबर 1915 ई.
188.	भोजन	हीरा बल्लभ जोशी	नवम्बर 1915 ई.
189.	कृत्रिम नेत्र	दयाशंकर झा	नवम्बर 1915 ई.
190.	सोने के गुण	गंगा शंकर पंचौली	दिसम्बर 1915 ई.
191.	हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय	लाला कन्नोमल मीमांसा	जनवरी 1916 ई.
192.	विज्ञान की महत्ता	संपादक	मार्च 1916 ई.
193.	शरीर की उष्णता	चन्दमौलि शुक्ल	अप्रैल 1916 ई.

194.	मृत्यु का नया रूप	संपादक	जून 1916 ई.
195.	वृक्ष की आँखें	–	जुलाई 1916 ई.
196.	एयरोप्लेन वायुयान	जगन्नाथ खन्ना	अगस्त 1916 ई.
197.	बेंजामिन फ्रैंकलिन	सिंह –वर्मा	अगस्त 1916 ई.
198.	पारस पत्थर	–	अगस्त 1916 ई.
199.	सब –मेरीन	जगन्नाथ खन्ना	सितम्बर 1916 ई.
200.	चिउटियां	लज्जा शंकर झा	सितम्बर 1916 ई.
201.	बिना तार का टेलीफोन	जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1916 ई.
202.	नक्षत्रों के भैतिक परिवर्तन	विष्णु नारायण सेन	नवम्बर 1916 ई.
203.	डेनमार्क के किसानों की सहकारिता और उनका सम्मिलित व्यापार	चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	दिसम्बर 1916 ई.
204.	सामुद्रिक माइन अर्थात् सुरंग	निरंजन दास धीर	दिसम्बर 1916 ई.
205.	पशु पक्षियों की स्मरण शक्ति पं.	बनमाली प्रसाद शुक्ल	जनवरी 1917 ई.
206.	बिजली और रसायन के बदौलत धनोपार्जन	जगन्नाथ खन्ना	जनवरी 1917 ई.
207.	चार्ल्स डार्विन	श्याम सुन्दर जोशी	मार्च 1917 ई.
208.	श्रीयुत् जगन्नाथ खन्ना	सेठ निहाल सिंह	मार्च 1917 ई.
209.	ग्रामो फोन	जगन्नाथ खन्ना	मई 1917 ई.

210.	पृथ्वी की उत्पत्ति	जगन्नाथ खन्ना	मई 1917 ई.
211.	साकची में लोहे का कारखाना	जोखू पाण्डेय	मई 1917 ई.
212.	जीवन क्या है	–	मई 1917 ई.
213.	प्राचीन विषयों का वैज्ञानिक अनुभव	कौशलेन्द्र प्रताप शाही	मई 1917 ई.
214.	किसानों की शिक्षा	माधव राव सप्रे	जून 1917 ई.
215.	प्राणि शास्त्र	जगन्नाथ खन्ना	जुलाई 1917 ई.
216.	सूर्य	शारदा प्रसाद	अगस्त 1917 ई.
217.	कपड़ों के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	अगस्त 1917 ई.
218.	गणित ज्योतिष शास्त्र	जगन्नाथ खन्ना	अगस्त 1917 ई.
219.	केंचुए की राम कहानी	कर्मनारायण	सितम्बर 1917 ई.
220.	वैज्ञानिक तौल और परीक्षा	चन्द्रमौलि शुक्ल	अक्टूबर 1917 ई.
221.	पदार्थ केसे बने?	जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1917 ई.
222.	भारत की खाने	ईश्वर दास जालान	नवम्बर 1917 ई.
223.	विज्ञानाचार्य वसु का विज्ञान मंदिर	–	जनवरी 1918 ई.
224.	विज्ञान की उपयोगिता	जगन्नाथ खन्ना	फरवरी 1918 ई.
225.	स्वास्थ्य मंत्र	गोपाल दामोदर तामसकर	मार्च 1918 ई.
226.	भूचाल	जगन्नाथ खन्ना	मई 1918 ई.

227.	मनुष्येतर प्राणियों की लीला	–	जून 1918 ई.
228.	विज्ञान का अध्ययन	दिनेश प्रसादवर्मा और नन्द कुमार सिंह	जून 1918 ई.
229.	पत्थर और लकड़ी के कीड़े	श्रीचरण वर्मा	जुलाई 1918 ई.
230.	मक्खन अनुवादक	गुलजारी लाल चतुर्वेदी	अगस्त 1918 ई.
231.	सफलता रहस्य	एल.सी. वर्मन	सितम्बर 1918 ई.
232.	मिट्टी का तेल	हरनारायण वाथम	दिसम्बर 1918 ई.
233.	जीव क्या वस्तु है ?	–	दिसम्बर 1918 ई.
234.	विस्फोटक शीतला रोग	प्रसादी लाल झा	जनवरी 1919 ई.
235.	मक्खियाँ	लज्जा शंकर झा	दिसम्बर 1918 ई.
236.	गणित से लाभ	गोपाल दास झालानी	मई 1919 ई.
237.	पृथ्वी और उसके खनिज पदार्थ	कृष्ण कुमार माथुर	जून 1919 ई.
238.	राशिचक्र	कन्नोमल	मई 1919 ई.
239.	क्षय रोग की प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा	सं. निहाल सिंह	दिसम्बर 1919 ई.
240.	प्लेटो	वृजमोहन वर्मा	नवम्बर 1919 ई.
241.	सांपों का स्वभाव	दबीलदास सामन्त	नवम्बर 1919 ई.
242.	रेल में बिजली	जगन्नाथ खन्ना	नवम्बर 1919 ई.

243.	महाकर्षण	–	अक्टूबर 1919 ई.
244.	विषधर प्राणी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	अक्टूबर 1919 ई.
245.	पत्थर का कोयला	रामवृक्ष पाल सिंह संघी	जनवरी 1920 ई.
246.	बिजली क्या है?	जगन्नाथ खन्ना	फरवरी 1920 ई.
247.	खेतों का संघटन और एकीकरण	चम्पाराम मिश्र	मार्च 1920 ई.
248.	अनाज की कमी कैसे दूर हो ?	दयाशंकर दुबे	अप्रैल 1920 ई.
249.	शक्ति उत्पन्न करने वाली बिजली	जगन्नाथ खन्ना	अप्रैल 1920 ई.
250.	पृथ्वी का पुत्र	वनमाली शुक्ल	जून 1920 ई.
251.	संस्कृत भाषा में रेखागणित	केदार नाथ	अगस्त 1920 ई.
252.	परमाणु की शक्ति	–	अगस्त 1920 ई.
253.	वायुमापक यन्त्र	अम्बिका प्रसाद पाण्डेय	अप्रैल 1920 ई.
254.	बिजी की ट्राम और रेलगाडी	जगन्नाथ खन्ना	अक्टूबर 1920 ई.
255.	जीवन और जीवनी शक्ति	रघुवर दयाल गुप्त	अक्टूबर 1920 ई.
256.	लुई पाश्चुर	संपादक	दिसम्बर 1920 ई.
257.	विषधर सर्प	संपादक	नवम्बर 1920 ई.
258.	हेनरी फेवर	वनमाली प्रसाद शुक्ल	नवम्बर 1920 ई.

259.	पृथ्वी की दैनिक गति और समय संबंधी चमत्कार	गोपाल दामोदर तामसकर	दिसम्बर 1920 ई.
260.	मकड़ी	वनमाली प्रसाद शुक्ल	दिसम्बर 1920 ई.
261.	भंग	कृष्ण राम झा	नवम्बर 1920 ई.
262.	विमानों का भविष्य	बालकृष्ण	सितम्बर 1920 ई.
263.	प्रो. त्रिभुवन दास गज्जर	विनायक मेहता	नवम्बर 1920 ई.
264.	मेघदूत में विज्ञान	रामदहिन मिश्र	अगस्त 1920 ई.

परिशिष्ट तीन

द्विवेदी युग
विज्ञान–विषयक पुस्तकों की सूची

(लेखक, प्रकाशक तथा प्रकाशन वर्ष सहित

परिशिष्ट तीन

राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद, नई दिल्ली

(National Council for Science &Techonology Communication, New Delhi, NCSTC)

द्वारा कराये गये सर्वेक्षण में उद्धृत पुस्तकों की सूची।

ये पुस्तकें देश के विभिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं, उनका भी एक सन्दर्भ इस सूची के साथ संलग्न है।

इस सर्वेक्षण में वैसे तो दो हज़ार से अधिक पुस्तकों का ज़िक्र है लेकिन मेरे विषय की समयावधि (1900ई.–1920ई.) को ध्यान में रखते हुए मैंने यह सूची बनाई है जिसमें कुल 69 पुस्तकों का ज़िक्र हो सका है।

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम तथा प्रकाशन स्थल	प्रकाशन वर्ष (सन्– ई.)	पुस्तकालय जहाँ पुस्तकें सुरक्षित हैं
1.	2	3	4	5
1.	ज्योर्तिविनोद	सम्पूर्णानन्द, लक्ष्मी–नारायण प्रेस, काशी	1917	नेशनल लाईबेरी, कोलकाता
2.	सूर्य सिद्धान्त	अनुवादक पं. इन्द्र नारायण द्विवेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	1918	प्रयाग लाईब्रेरी
3.	गणित प्रकाश	पं. श्रीलाल, मेडिकल हाल, प्रेस, बनारस	1860	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
4.	पिण्ड चन्द्रिका	पं. वंशीधर, गौरमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद	1868	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी, वाराणसी
5	बीजगणित	बापू देवशास्त्री परांजपे श्री गणपति कृष्ण जी, बाम्बे	1850	नेशनल लाइब्रेरी कोलकाता
6.	मेंसुरेशन	मुंशी रतन लाल	1880	डॉ. शिवगोपाल मिश्र, व्यक्तिगत लाईब्रेरी, इलाहाबाद
7.	सरल त्रिकोणमिति की उपक्रमणिका	लक्ष्मी शंकर मिश्र बनारस मेडिकल हाल प्रेस, वाराणसी	1873	डॉ. शिवगोपाल मिश्र, लाईब्रेरी

8.	हिन्दी बीजगणित	पं. मोहन लाल, मुंशी नवल किशोर, लखनऊ	1865	नेशनल लाईब्रेरी कोलकाता
9.	भूकम्प	रामचन्द्र वर्मा, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ	1918	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
10.	पदार्थ विद्यासार	सदासुख लाल अनुवादक : विजय शंकर (उर्दू से) मुंशी नवल किशोर अवध	1865	नेशनल लाईब्रेरी कोलकाता
11.	वायु–विज्ञान	राजा राम सिंह इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद	1908	हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
12.	हिन्दी कमेस्ट्री	प्रो. लक्ष्मी चंद विज्ञान हुनर कार्यालय, बनारस सिटी	1917	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
13.	खाद और उनका व्यवहार	ज्ञानदत्त त्रिपाठी, राधारमण त्रिपाठी जवाहरी मोहल्ला, इलाहाबाद	1915	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
14.	वृष्टि प्रबोध	पं. मिठाई लाल व्यास अलभ्य प्राचीन ग्रन्थ साहित्य, राजपूताना	1913	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
15.	जन्तु–प्रबन्ध व प्राणि–व्यवहार	पं. गंगा प्रसाद मिश्रा खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर, पटना	1911	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
16.	पशुपालन	राय बहादुर लाला बैजनाथ मैनेजर, दपहर वैश्य हितकारी, मेरठ	1913	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
17.	कपास और भारतवर्ष	प्रो. तेज शंकर विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद	1920	हिंदी सा. सम्मेलन इलाहाबाद
18.	कपास की खेती	अनुवादक राम प्रसाद भिसिलसा स्टेट ग्वालियर, के सूबा–जिला मजिस्ट्रेट	1918	हिन्दुस्तान एकेडमी लाईब्रेरी इलाहाबाद
19.	मक्का की खेती	राम प्रसाद	1918	,,

20.	मूँगफली की खेती	,,	1918	हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
21.	कृषि कौमुदी	दुर्गाप्रसाद सिंह काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	1919	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी, वाराणसी
22	कृषि विद्या	अश्विनी कुमार शुक्ल	1918	हिंदुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी इलाहाबाद
23	कृषि सुधार	कुँवर हनुमन्त सिंह रंधुवंशी, आगरा	1916	हिंदी साहित्य सम्मेलन लाईब्रेरी, इलाहाबाद
24	वैज्ञानिक खेती	हेमन्त कुमारी देवी अन्नदा प्रसाद भट्टाचार्य, लखनऊ	1914	,,
25	वृक्ष–विज्ञान	प्रवासी लाल वर्मा वाणी विहार वाराणसी	1911	,,
26.	उत्तम संतति	वैद्य जटाशंकर, लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद	1915	हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
27	नारी स्वास्थ्य रक्षक	शालिग्राम, पं. सुदर्शन आचार्य, गृह लंक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग	1920	हिंदुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
28.	बाल स्वास्थ्य रक्षा	पं. रामजी लाल शर्मा इंण्डियन प्रेस, प्रयाग	1910	हिन्दी साहित्य सम्मेलन लाईब्रेरी, इलाहाबाद
29.	मानव संतति शास्त्र	मुंशी हीरा लाल (जालोरी) खइग विलास प्रेस, बांकीपुर पटना	1913	,,
30	क्षय रोग	डॉ. एस. एडोल्फ नाफ़ अनुवादक : बालकृष्ण शर्मा इण्डियन प्रेस, प्रयाग	1913	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
31	चिकित्सा सोपान	बी. के. मित्रा, इण्डियन इक्लिक्टिक फार्मेसी, दिल्ली	1919	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

32.	छूत वाले रोग और उनसे बचने के उपाय	मिसेज़ जगरानी देवी, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	1909	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी, वाराणसी
33	नपुंसक चिकित्सा	पं. कन्हैयालाल मिश्र अनुवादक : रामचन्द्र राघव	1914	हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
34.	प्राकृत ज्वर	राधा बल्लभ, वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला, प्रयाग	1911	,,
35.	भारत में प्लेग	हनुमान शर्मा, वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला प्रयाग	1911	,,
36.	औषधि संग्रह कल्पावली	राधा कृष्ण महाराज नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	1875	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी वाराणसी
37	वृहद् बूटी प्रचार	कृष्ण लाल बाबू किशन लाला प्रेस, मथुरा	1917	हिंदी साहित्य सम्मेलन, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
38	मैं नीरोग हूँ या रोगी	लुई कूने हिंदी पुस्तक ऐजेन्सी हैरिसन रोड कोलकाता	1920	,,
39.	रसेन्द्र चिन्तामणि	धुन्धुक नाथ जी, अनुवादक बलदेव प्रसाद मिश्र, खेतबाडी सातवीं गली खमभात लेन, मुम्बई	1901	विज्ञान परिषद् प्रयाग, लाईब्रेरी, इलाहाबाद
40	वृक्ष विज्ञान चिकित्सा	प्रो. राधाकृष्ण पाराशर मेडिकल पुस्तक भवन, अशोक भवन, बनारस	1895	हिन्दी सात्यि सम्मेलन मिः प्रेमचंद श्रीवास्तव स्टाफ कालोनी, सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद
41	शरीर और शरीर रक्षा	चन्द्रमौलि शुक्ल अपूर्व कृष्ण बोस, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	1914	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लाईब्रेरी इलाहाबाद
42	संजीवनी बूटी	सत्यदेव परिव्राजक	1917	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी वाराणसी

43	आरोग्य शिक्षा	पं. मुरलीधर शर्मा, खेमराज श्रीकृष्णदास बॉम्बे	1908	हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
44	सरल शिक्षा	पं. तारिणी प्रसाद मिश्र, द कॉरपोरेशन बुक डिपो, भागलपुर	1913	,,
45	विज्ञानकल्पतरु अर्थात् वैज्ञानिक विश्वकोश	मुख्तयार सिंह जनरल पब्लिशिंग कम्पनी मेरठ	1914	,,
46	हिंदी वैज्ञानिक कोश	श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	1906	,,
47	औद्यागिकी	पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रीय हिंदी मंदिर, जबलपुर	1920	हिंन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद
48	कालबोध	शिवकुमारसिंह काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस	1916	हिंदुस्तानी एकेडमी
49	गुरु देव के साथ यात्रा–1	बसीश्वर सेन अनुवादक : महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, विज्ञान कार्यालय, प्रयाग	1917	विज्ञान परिषद् प्रयाग लाईब्रेरी, इलाहाबाद
50	जेनेटॉलॉजी	जॉन बॉबी डॉड्स अनुवादक : काशी नाथ खत्री आर्य दर्पण प्रेस, शाहजहाँपुर	1884	हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
51	डोमेस्टिक हाईजीन	डॉ. कालीचरण दूबे पं. आत्माराम शर्मा, काशी	1916	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी, वाराणसी
52	तम्बाकू विष है	रामेश्वर प्रसाद शर्मा	1916	सचित्र नवजीवन लाईब्रेरी, कानपुर
53	पदार्थ विज्ञान विटप	पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र, मेडिकल हाल प्रेस, बनारस	1875	कार्माइकेल लाईब्रेरी, ज्ञानवापी, वाराणसी
54	रसायन इतिहास	आत्माराम	1918	विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

55	वायु चक्र विज्ञान	पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र मेडिकल हाल प्रेस बनारस	1874	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी वाराणसी
56	वायु सागर अर्थात् वायु की उत्पत्ति	कॉलिन एस. वैलेन्टाइन, देहाती राम प्रेस, आगरा	1867	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी वाराणसी
57	विज्ञान और आविष्कार	सुख सम्पत्ति राय भण्डारी, श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इन्दौर	1919	हिन्दुस्तानी एकेडमी लाईब्रेरी, इलाहाबाद
58	विज्ञान प्रवेशिका	रामदास गौड़ और शलिग्राम भार्गव विज्ञान परिषद् , प्रयाग	1914	”
59.	विज्ञान प्रवेशिका (भौतिकी)	गोवर्धन यंत्रालय गुरुकुल कांगड़ी	1910	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
60	विश्व प्रपञ्च–1	अनुवादकःरामचन्द्र शुक्ल काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	1920	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी वाराणसी
61.	वैज्ञानिक अद्वैतवाद	रामदास गौड़, ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी	1920	हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद
62	व्यावहारिक विज्ञान	कृष्ण गोपाल माथुर राजपूताना हिंदी साहित्य सभा	1920	”
63	डाक बिजली का प्रकरण	बलदेव वक्ष, गौरमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद	1860	कार्माइकेल लाईब्रेरी, वाराणसी
64	तेल की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्र, विज्ञान हुनर, माला कार्यालय, शकरकन्द गली, बनारस सिटी	1920	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी तथा हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद
65	रंग की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्र देवी प्रसाद अग्रवाल	1919	कार्माइकेल लाईब्रेरी ज्ञानवापी, वाराणसी
66	रोशनाई बनाने की पुस्तक	प्रो. लक्ष्मी चन्द्र, विज्ञान हुनरमाला कार्यालय, बनारस सिटी	1915, 1916, 1918	हिन्दुस्तानी अकेडमी लाईब्रेरी एकेडमी इलाहाबाद

67.	वार्निश और पेण्ट	”	1917	सेन्ट्रल स्टेट लाईब्रेरी, नॉर्थ मलाका इलाहाबाद
68.	फोटोग्राफी शिक्षा	पं. क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुख संचारक कम्पनी, मथुरा	1920	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
69.	पदार्थ विद्या	भूदेव मुखोपाध्याय बांकीपुर, पटना	1882	”

परिशिष्ट चार

नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी
से प्राप्त
आर्य भाषा पुस्तकालय
की विज्ञानादि विषयक
पुस्तकों की संक्षिप्त सूची

आर्य भाषा पुस्तकालय की पुस्तक सूची से उद्धृत पुस्तकें

इस विस्तृत सूची में पुस्तकों के प्रकाशन की कालावधि का सम्बन्ध अधिकांशतः द्विवेदी युग से है किन्तु बहुत सी पुस्तकें इस सूची में ऐसी भी देखने को मिल जाएंगी जिनका प्रकाशन वर्ष या तो 1900 ई. से पहले का है या 1920 ई. के बाद का है। ये सूचियाँ केवल नमूने के तौर पर दी जा रही हैं। मूल सूची में इससे भी अधिक विषयों पर अनेकानेक पुस्तकों की जानकारी मिल सकती है।

मनोविज्ञान पर पुस्तकें

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	कुन्दनलाल गुप्त	सरल मनोविज्ञान	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई	1921 ई.
2.	एलेन लिली अनुवादक केदारनाथ शर्मा	मन की अद्भुत शक्ति	इण्डियन प्रेस, प्रा. लि. प्रयाग	1926 ई.
3.	चम्पत राय जैन कान्ता प्रसाद जैन	मनोविज्ञान	आत्मिक साहित्य मण्डल दिल्ली	1932 ई.
4.	चन्द्रमौलि शुकुल	मनोविज्ञान	गंगा ग्रन्थागार लखनऊ	1981 वि.
5.	लालजी राम शुक्ल	बाल मनोविज्ञान	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	1996 वि.

विज्ञान निबन्ध और आलोचना पर पुस्तकें

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी	प्रकृति	इंडियन प्रेस, प्रा.लि. प्रयाग	1911 ई.
2.	जगदानन्द राय	प्राकृतिकी	"	1925
3.	सुख सम्पति राय भंडारी	विज्ञान और आविस्कार	मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर	1976 वि.
4.	मैत्र, द्वारिका नाथ	विज्ञान शिक्षा और हिन्दी में उसकी आवश्यकता	नागरी प्रचारिणी सभा, कलकत्ता	1972 वि.

मिस्मरिज्म और आत्म विद्या पर पुस्तकें

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	इन्द्रदत्त शर्मा	कनिष्ठ योग पूर्ववार्द्ध	ग्रन्थकार जबलपुर	1940 ई.
2.	लक्ष्मी नारायण क्षत्रिय	प्लानचिट गीतावली	ग्रन्थकर्ता त्रिलोचन घाट काशी	1908 ई.
3.	जगतनारायण	परलोक की	डायमंड जुबली	1938 ई.

		कहानियां	थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस पटना	
4.	सरकार, पीसी	जागती कला	जैन प्रेस, लखनउऊ	1896 ई.

कृषि शास्त्र पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	गंगा प्रसाद पाण्डेय	कृषि मित्र	सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ एग्रीकल्चर कृषि विभाग कानपुर	1922 ई.
2.	कोचक, टी. एस.	फॉर्मै बुक कीपिंग	ग्रन्थकार कृषि शास्त्री आफिस, बलिपुरा, बुलन्दशहार	1923 ई.

इंजिनियरिंग पर पुस्तकें

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	निहालचन्द गौड़	सिविल इंजिनियरिंग	ग्रन्थकार विक्टोरिया 2.कॉलेज, लश्कर, ग्वालियर	1912 ई.
2.	राय नवीनचन्द	निर्माण विद्या भाग 1 निर्माण विद्या भाग 2	पंजाब यूनिवर्सिटी कॉलेज लाहौर	1882 ई.

पशु चिकित्सा पर पुस्तकें

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	जयपाल सिंह जुदेव	गोधन वर्धिनी	डायमंड जुबली प्रेस, बुन्देलखण्ड	1899 ई.
2.	मैकूलाल शर्मा	पशु चिकित्सा दूसरा संस्करण	एम.एल. शर्मा, शाहाबाद, हरदोई	1916 ई.
3.	रामनारायण पण्डित	पशुओं के महा घातक रोगों की गुटिका	ग्रन्थकार बरेली कॉलेज	1873 ई.

सूची आचारशास्त्र (ब्रह्मचर्य)

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का शीर्षक	प्रकाशन सिल / संस्थान	प्रकाशन वर्ष
1.	केशव शास्त्री गांधी, महात्मा अनु. मृत्युंजय प्रसाद	अमर जीवन अनीति की राह पर	सैनिटोरियम, देहली सत्ता साहित्य मंडल, दिल्ली	1931 ई.
2.	"	ब्रह्मचर्य	" "	1939 ई.
3.	"	ब्रह्मचर्य और आत्म सयंम	एस. एस. मेहता एंड ब्रदर्स काशी	1934 ई.
4.	"	ब्रह्ममचर्य के अनुभव	सहित्य मंदिर, दारागंज प्रयाग	1932ई.

5.	"	ब्रह्मचर्य पर महात्मा गांधी का अनुभव	तरुणभारत ग्रंन्थावली कार्यालय दारागंज, प्रयाग	1989 ई.
6.	गोवर्धन लाल	नीति विज्ञान 2– प्रकारण	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई	1923 ई.
7.	चंद्रशेखर शास्त्री	आत्मनिर्णय	भारती साहित्य मंदिर, देहली	1936 ई.
8.	चंद्रशेखर शास्त्री	चरित्र निर्माण	भारती साहित्य मंदिर देहली	1937ई.
9.	छविनाथ पांडेय	चरित्र चिंतन	हिन्दी पुस्तक एजेंसी, 126 हैरिसन रोड, कलकत्ता	1981 वि.
10	जगन्नारायण देव शर्मा	ब्रह्मचर्य विज्ञान	सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर	1920 ई.
11.	जाधव दशरथ बलवंत	चरित्र साधन	उपन्यास बहार आफिस काशी	1918 ई.
12.	देवनारायण द्विवेदी	ब्रह्मचर्य का महत्व	कलकत्ता पुस्तक भंडार 171 ए हैरिसन रोड कलकत्ता	1991 वि.
13.	पंत, दुर्गादत्त	ब्रह्मचर्योपदेश	ऋषिकुल हरिद्वार	1965ई.
14.	पन्नालाल शर्मा	युवा रक्षक	श्राजपूत एंग्लो ओरिएंटल प्रेस, आगरा	–
15.	बाबूराम शर्मा	स्जीवन बूटी	ग्रंथकार, अहेरीपुर, जिला एटा	1936 वि.
16.	भगवानदीन लाला	ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक व्याख्या	सहित्य विद्यालय काशी	–
17.	योगानंद	ब्रह्मचर्य पर महर्षि दयानन्द	आदर्श साहित्य मंडल लखनऊ	–

18.	श्रामनाराण वैद्य शास्त्री	बालोपयोगी वीर्य रहस्य	संतति रहस्य आफिस बगियामनोराम कानपुर	—
19.	रामप्यारे त्रिपाठी	सदाचार और शिष्टाचार ब्रह्मचर्य शिक्षा	थ्नराकार पुस्तकालय, बनारस	1937 ई.
20.	विश्वेश्वरानंद	ब्रह्मचर्य	ग्रंथकर्ता मुजफ्फरपुर	1903 ई.

कामशास्त्र पर पुस्तकें

1.	अयोध्याप्रसाद भार्गव	संतति शास्त्र	भार्गव बुक डिपो, काशी	1923 ई.
2.	ऋषिलाल अग्रवाल	मनचाही संतान	अग्रवाल प्रेस इलाहाबाद	1928 ई.
3.	एक चिकित्सक	गुप्त चिट्ठी	शिशिरकुमार मित्र, कॉलेज स्ट्रट मार्केट, कलकत्ता	1923 ई.
4.	एस. जी. व्यास	संतति शास्त्र	बंबई भूषण यंत्रालय, मथुरा	1929 ई.
5.	कन्हैयालाल मिश्र	काम रहस्य	ग्रंथकार, इलाहाबाद	1932ई.

आयुर्वेद पर पुस्तकें

1.	मुरलीधर वर्मा	आयुर्वेद निदान समीक्षा	ना.प्र.सभा. काशी	—
2.	राधावल्लभ वैद्यराज	वेदों में वैद्यक ज्ञान	ग्रंथकार विजयगढ़, अलीगढ़	—
3.	सुरेन्द्र कुमार शर्मा	भारत में कुनैन का	सुरेंद्र एंड कंपनी, चिढ़ावा	1938ई.

	शा.	व्यापार	जयपुर स्टेट	
4..	जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल	आयुर्वेद का महत्व	ग्रंथकार दारागंज प्रयाग	1967 वि.
5.	पूनमचंद तनसुख वैद्य	वैद्यक की उन्नति किस प्रकार होगी 2 प्रति	ग्रंथकार, ब्यावर	1968 वि.
6.	प्रताप सिंह, कविराज	कविराज प्रताप सिंह का भाषण	अखिल भारतीय 24 वां सम्मेलन, शिकारपुर	1934 ई.
7.	मोहनलाल	आयुर्वेद महत्व	बीकनेरी आयुर्वेदिक फार्मेसी देशनोक, बीकानेर	1936 ई.
8.	शांडिल्य त्रिवेदी	आयुर्वेद का महत्व	आयुर्वेद प्रचारक, काशी	1933 ई.

सूची चिकित्सा शास्त्र

1.	अंबालाल शर्मा	क्षयरोग और उसकी चिकित्सा	नवजीवन फार्मेसी अजमेर	1936 ई.
2.	अकबर अली खां अनु. देवी प्रसाद	तिव्य अकबर	बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा	1982 वि.
3.	अग्निवेश	अंजन निदान	वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई	1961 वि.
4.	"	अत्रिदेवी चरक संहिता खंड।	आर्ष साहित्य मण्डल, अजमेर	1962 वि.
5.	"	" 2 प्र.	"	"
6.	"	" 2 प्र.	"	"
7.	"	" 2 प्र.	"	"
8.	अत्रदेव जी	घर का वैद्य	आनंद बुक डिपो, सुल्तानपुर	1936 ई.

भूगर्भ शास्त्र पर पुस्तकें

1.	अभयचंद्र जाजू	मणिमोहरा विधान अर्थात रत्नपरीक्षा	ग्रंथकार बी बी हटिया, काशी	
2.	गुरुदास जी	रत्नपरीक्षा 2 प्र.	वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई	1953 वि.
3.	घासी राम जैन	रत्नपरीक्षक	सुदर्शन, यंत्रालय मथुरा	
4.	जोशी शंकरराव	भूकवच	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ	1987 वि.
5.	रामचन्द्र वर्मा	भूकंप	"	1985 वि.
6.	मनीषी ममर्थदान	रत्नसागर	राजस्थान यंत्रालय, अजमेर	1962 वि.

स्त्री तथा बालरोग पर पुस्तकें

1.	अत्रिदेव गुपत	धात्री शिक्षा	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ	1989 वि.
2.	अब्दुल हकीम खां अनु. वंशीधर शर्मा	धात्री शिक्षा	कायस्थ एजूकेशन कमेटी अलीगढ़	1905
3.	आनंद जीवन	शिशुपाल	बालकृष्ण भाटिया, मथुरा	
4.	एन. के. वर्मा	स्त्री स्वास्थ्य रक्षिका	आर.डी. सिन्हा, गंगा प्रसाद, रोडवेज लखनऊ	1920 ई.
5.	ए.वी.वी. आर. शर्मा	युवती रोग चिकित्सा	ग्रंथकार तिलहार, जि. शाहजहांपुर	1928 ई.
6.	कमलाकांत	धात्री शिक्षा भाग 1	बिहार बंधु प्रेस, पटना	1878 ई.

बाल साहित्य–स्वास्थ्य रक्षा और सफाई पर पुस्तकें

1.	काशीनाथ द्विवेदी	मेरा घर	ग्रंथकार बड़वानी	1941 ई.
2.	केशवकुमार ठाकुर	तंदुरूस्त बालक 2 प्र.	आदर्श गंथमाला, दारागंज, प्रयाग	1932 ई.
3.	छबिनाथ पांडेय आर.एन. बसीकर	सफाई और स्वास्थ्य	बाल साहित्य प्रकाश समिति 171 हरिसन रोड, कलकत्ता	1937ई.
4.	प्रताप नारायण चतुर्वेदी	सूर्य नमस्कार शुद्धिदर्पण	भारतवासी प्रेस, दारागंज प्रयाग	
5.	विधिचंद	शुद्धिदर्पण	गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद	1873 ई.
6.	बेनी चरण महेंद्र	शरीर और स्वास्थ्य	गया प्रसाद एवं संस आगरा	1937 ई.
7.	भगवानदीन	स्वास्थ्य विद्या	विद्या प्रचारक बुक डिपो, गया	1916 ई.
8.	मार्सडन, ई.	स्वास्थ्य कथा	मैकमिलन एंड कंपनी, कलकत्ता	
9.	रामजी लाल शर्मा	बाल स्वास्थ्य रक्षा	इंडियन प्रेस, प्रयाग	1913 ई.
10.	शांडिल्य त्रिवेदी	विद्यार्थी कर्तव्य	कृष्ण फार्मेसी, काशी	1934 ई.
11.	शिवपूजन सहाय	संसार के पहलवान भाग 1	हिन्दी पुस्तक भंडार हलेरिया सराय	1986 वि.

भौतिक विज्ञान पर पुस्तकें

1.	कल्याण वक्ष माथुर	वायुमंडल	विज्ञान परिषद् प्रयाग	1940 ई.
2.	गोवद्धनजी	भौतिकी	सद्धर्म प्रचारक प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी	1967 वि.

3.	जयकृष्ण शर्मा	विद्युत प्रकाश		
4.	जोशी, प्रेम बल्लभ, डॉ. गंगानाथ झा	ताप 2 प्र.	विज्ञान परिषद् प्रयाग	1978 वि.
5.	निहाल करण सेठी	वैज्ञानिक परिमाण 2 प्र.	"	1985 वि.
6.	सत्यप्रकाश वंशीधर अनु. मोहनलाल पंडित	सिद्ध पदार्थ विज्ञान	सरकारी पुस्तकालय, आगरा	1853 ई.
7.	भीष्मचंद्र शर्मा	बिजली की बैटरियां 2 प्र.	बी.सी.शर्मन एंड कंपनी, 25 लाट्रश रोड, लखनऊ	1933 ई.

प्राणिशास्त्र पर पुस्तकें

1.	महावीर प्रसाद	मधुभक्षिका भाग 1	भारत मित्र प्रेस, 97, मुक्ताराम बाबू स्टेट, कलकत्ता	1903 ई.
2.	बृजेश बहादुर	जन्तु जगत	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	1930 ई.
3.	श्याम सुन्दरलाल	सीवर जीव मीमांसा	आर्य प्रतिनिधि सभा, अवध	1901 ई.

ज्योतिष पर पुस्तकें

1.	लेखराम शर्मा जगदम्बा प्रसाद	ऐतिहासिक निरीक्षण भाग 2	वैदिक पुस्तक प्रचार फण्ड, मेरठ	1900 ई.
2.	मनराज सिंह	सोलह साल की	खड्ग विलास प्रेस,	1905 ई.

		जंत्री	बांकीपुर पटना	
3.	गंगाधर	जयोतिष कल्पद्रुम भाषा	ज्वाला प्रसाद श्यामसुन्दर पुरोहित लखनऊ	1901 ई.

कताई–बुनाई पर पुस्तकें

1.	कुन्दर वलवन्त दिवान	तकली	हिन्दुतानी तालिमि संघ वर्धा	1931 ई.
2.	भावे, बिनोवा	मूल उद्योग कातना	"	1936 ई.

छपाई पर पुस्तकें

1.	दाते, शंकर रामचन्द्र अनुवादकः गोपी बल्लभ उपाध्याय	मुद्रण प्रवेश अर्थात् कम्पोज कला	लोक संग्रह छापाखाना सदाशिव पेट, पूना	1938 ई.
2.	स्वामीदीन	प्रेस की कुंजी दूसरा प्रकरण	यू.पी. आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स, कासगंज	1972 वि.

सन्दर्भ सूची

सहायक–पुस्तकें (संदर्भ ग्रन्थों की सूची कालक्रमानुसार व्यवस्थित है)

1. सर ऑलिवर लॉज
   ए क्रिटिसिज़्म ऑफ प्रो. हैकल्स " द रिडिल ऑव द यूनिवर्स"
   विलियम्स एण्ड नॉरगेट प्रकाशन, लंदन 1907 ई.

2. ई. एच. हैकल
   'द रिडिल ऑव द यूनिवर्स ' (अंग्रेजी अनुवाद – जोसेफ़ मैक्केब)
   वॉटस एण्ड कम्पनी, लन्दन 1911 ई.

3. रामचन्द्र शुक्ल
   विश्व प्रपञ्च
   नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1962 ई.

4. रामविलास शर्मा
   भारतेंदु हरिश्चन्द्र
   राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, 1966 ई.

5. श्री नारायणचतुर्वेदीचतुर्वेदी
   आधुनिक हिंदी का अदिकाल
   हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1973 ई.

6. रामविलास शर्मा
   भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा
   राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1975 ई.

7. रामविलास शर्मा
   महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
   राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली 1977 ई.

8. सत्य प्रकाश मिश्र (संपादक)
   बालकृष्ण भट्ट–प्रतिनिधि संकलन
   नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 1995 ई.

9. भारत यायावर (संकलन/संपादन)
महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली
किताब घर, नई दिल्ली, 1995 ई.

10. द वर्डसवर्थ इन्साइक्लोपीडिया
वर्ड्सवर्थ रिफ़रेन्स खण्ड 3
हेलिकन पब्लिशिंग लि. हर्टफोर्डशायर, इंग्लैंड, 1995 ई.

11. कमला प्रसाद (संपादन)
भारतेंदु हरिश्चंद्र : प्रतिनिधि संकलन
नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 1996 ई.

12. रामचंद्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2054 वि. (1977 ई.)

13. रामविलास शर्मा
भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्यायें
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, 1999 ई.

14. डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह
आधुनिक हिंदी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका
बिहार राष्ट्र–भाषा–परिषद्, पटना, 2000 ई.

15. डॉ. मनोज कुमार पटौरिया
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता,
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली 2000 ई.

16. रामविलास शर्मा
आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, 2000 ई.

17. दीपक कुमार
साइन्स एण्ड द राज (1857–1905)
ऑक्सफोर्ड यूनिवसिटी प्रेस, 2000 ई.

18. घटक एवं लोकनाथन
क्वान्टम मैकेनिक्स : थियरी एण्ड एप्लीकेशन्स
मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, 2001 ई.

19. कुसुम चतुर्वेदी व ओऽम् प्रकाश सिंह (संपादन)
चिन्तामणि – 4 (रामचन्द्र शुक्ल के संकलित निबन्ध)
आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, दुर्गाकुण्ड वाराणसी, 2002 ई.

20. एम.पी. कौशिक
माडर्न बॉटनी
प्रकाश पब्लिकेशन्स मेरठ, 2002 ई.

21. बर्ट्रन्ड रसेल
द इम्पैक्ट ऑफ साइन्स ऑन सोसाइटी
रूटलेज प्रकाशन (टेलर व फ्रांसिस ग्रुप) लंदन/न्यूयार्क, 2003 ई.

22. ज्ञानचंद जैन
भारतेंदु हरिश्चन्द्र : एक व्यक्तित्व चित्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004 ई.

23. वीर भारत तलवार (संपादन)
राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' : प्रतिनिधि संकलन
नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) इण्डिया 2004 ई.

पत्र–पत्रिकाएं (सन्दर्भित पत्र–पत्रिकाओं की सूची कालक्रमानुसार व्यवस्थित की गई है)

1. 'सरस्वती' की फाइलें (1901–1920)
   (संपादक : पले श्यामसुन्दर दास फिर महावीर प्रसाद द्विवेद)
   इण्डियन प्रेस प्रा. लि. इलाहाबाद

2. 'विज्ञान' की फाइलें
   विज्ञान परिषद्, प्रयाग

3. आर्यभाषा पुस्तकालय, पुस्तक सूची : प्रथम खण्ड
   नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2001 (1944 ई.)

4. संधान : अंक 2, 3, तथा 4 (जुलाई–सितम्बर 2001 से जन.–मार्च 02)
   सम्पादक : लालबहादुर वर्मा एवं सुभाष गाताड़े, इलाहाबाद

5. इमरजेन्स ऑफ मॉडर्न साइन्स
   एफ. एस.टी.– 1 इग्नू, जुलाई 2002 ई.

6. समयांतर : फरवरी 2004 ई.
   (वैज्ञानिक चेतना और हमारा समाज)
   सम्पादक : पंकज बिष्ट, दिल्ली

7. नया मानदण्ड : जनवरी–मार्च 2004 ई.
   प्र. सम्पादक कुसुम चतुर्वेदी
   आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, वाराणसी

Jawaharlal Nehru University Library